॥ श्रीः ॥

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयवेद-वेदांगानुसन्धानग्रन्थमालायाम्

ज्योतिश्शास्त्रस्य प्रथमं पुष्पम्

श्रीमद् भास्कराचार्यविरचितः

सिद्धान्तशिरोमणिः

वासनाभाष्यसहितो मध्यमाधिकारान्तः

काशिकहिन्दूविश्वविद्यालयीयसंस्कृतमहाविद्यालयज्यौतिपशास्त्राध्यापकेन
गणित-फलितज्यौतिषशास्त्राचार्येण अल्मोड़ामण्डलान्तर्गत-
जुनायलग्रामवास्तव्येन विद्वद्वरहरिदत्तजोशीतनूजन्मना
श्रीकेदारदत्तजोशीशास्त्रिणा
स्वविरचितदीपिका-शिखा भाषानुवादाभ्यां
संयोज्य सम्पादितः

सं० २०१८ सन् १९६१

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयेन प्रकाशितः ।

मूल्यम् ५) रूप्यकाणि

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयमुद्रण
लक्ष्मीदासेन मुद्रितः

PREFACE

Astronomy is reckoned amongst the six Vedāṅgas. Modern researches have shown that the Vedic Ṛishis also possessed a good knowledge of the various astronomical phenomena. The Brāhmaṇa writers developed these studies further, specially for their practical use in the ritual. Their outcome was the Śulbasūtras (circa 5th cent. B.C.) forming part of the Śrautasūtras and serving the intensely practical need of building the fire-altars. They contain elements of geometry and the theorem of Pythogoras was early enunciated in them. In algebra the Indians 'attained an eminence far exceeding anything ever achieved by the Greeks' (A. A. Macdonell). The *Āryabhaṭīya* discusses problems in series, permutations and equations, and Bhāskarāchārya gives quadratic and cubic equations also. The outstanding fact in the history of world-science is that 'the Indians invented the numerical figures used all over the world. The influence which the decimal system of recoking dependent on those figures has had not only on mathematics, but on the progress of civilisation in general, can hardly be over-estimated. During the eighth and ninth centuries the Indians became the teachers in arithmetic and algebra of the Arabs, and through them of the nations of the West' (A. A. Macdonell).

The earliest works of scientific Indian astronomy were called Siddhāntas, of which only the *Sūryasiddhānta* has survived. These studies were taken up through the centuries by a succession of brilliant teachers, like Āryabhaṭa (born in 476 A.D. at Pāṭaliputra) who maintained the rotation of the earth round its axis and has given the value of π as 3.1416, Varāhamihira (born near Ujjain, about 505 A.D., and died in 587 A.D.) who wrote the *Bṛihat-saṁhitā*, *Bṛihaj-jātaka* (also called *Horā-śāstra*), *Laghu-jātaka*, and *Pañcha-Siddhāntikā* (a practical astronomical treatise); Brahmagupta (born in 598 A.D.), author of the *Brahma-sphuta-siddhānta* speciali-

समर्पणम्

श्रीमन्तो मालवीया भवदतुलपदाम्भोजधूलिप्रसादात्

ज्योतिश्शास्त्रं दुरूहं महितगुरुमुखात्तेन भक्त्या स्वधीतम् ।

सोऽहं जोशीत्युपाह्वो विनयनतशिरा नाम केदारदत्तः

युष्माकं पादयुग्मे कुसुममुपहरन् ग्रन्थरूपं नतोऽस्मि ॥

भारतीय ज्योतिष की एक झलक

जगत और जीवन एक ज्योति है। ज्योति का शुद्धरूप ज्योतिष है। अतः ज्योतिष स्वरूप ब्रह्म की व्याख्या का नाम ज्योतिष है। इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण ने ब्रह्मके त्रिपादामृत स्वरूप त्रयी को त्रीणि ज्योतींषि नाम से पुकारा है (५।५।३२)। वेद रूप ज्योतिष, ब्रह्मरूप ज्योति या ज्योतिष है। इसका दूसरा नाम संवत्सर ब्रह्म या महाकाल (रुद्र) है। इसी को अक्षर ब्रह्म भी कहते हैं। उस संवत्सरात्मा महाकाल ब्रह्म के सृष्टि मूलबीज अक्षरों या कलाओं को एक एक कर जानना वैदिक दार्शनिक ज्योतिष या अव्यक्त ज्योतिष कहलाता है। इसी का एक दूसरा स्वरूप लौकिक या व्यक्त ज्योतिष है जिसे खगोलीय या ब्रह्माण्डीय ज्योतिष कहते हैं। दोनों की कलायें या अक्षर एक समान हैं। एक बिम्ब है दूसरा प्रतिबिम्ब। उसी वैदिक दर्शन के नौ प्रकार के अहोरात्र या संवत्सर ब्रह्म दर्शन का लोक गणित से विवेचन कर वैदिक ज्योतिष की अबतक सुरक्षा मध्ययुग के आचार्यों ने की है। वैदिक दर्शन के परिचय के लिए यह वेदाङ्गीभूत ज्योतिष दर्शन सूर्य के समान प्रकाश देने का काम करता है। अतः इसे वेद पुरुष या ब्रह्म पुरुष का चक्षु (सूर्यः) भी कहा गया है। 'ज्योतिषामयनं चक्षुः'। 'चक्षोः सूर्यो अजायत'।* ग्यारहवीं शताब्दि के बाद भारत की अनेक शतकों की पराधीनता के युग में अन्य प्राचीन भारतीय शास्त्रों के साथ साथ इस शास्त्र के भी अध्ययन अध्यापन की उपेक्षा हुई। अब भारत स्वतन्त्र है और देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के प्रयत्नों में संलग्न है। ज्योतिषशास्त्र के गम्भीर रहस्यों का अध्ययन और उद्‌घाटन भी भारत के महत्व की वृद्धि में सहायक होगा।

वैदिक-ज्योतिष शास्त्र का आविर्भाव आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के चक्षुरूप में हुआ था। अतः इसका सम्बन्ध धर्मार्थ काम मोक्ष से स्पष्ट ही सिद्ध है। इस शास्त्र में मध्ययुग के आचार्य भास्कराचार्य का "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रन्थ, वैदिक और लौकिक दोनों ज्योतियों के अभूतपूर्व सामञ्जस्य और समन्वय के साथ कई एक ऐसे दुरूह विषयों का सागर है कि सर्वसाधारण की तो बात ही क्या, कई विद्वान् भी इसे सरलता से समझ या समझा नहीं पाते और विद्यार्थियों को तो पग-पग पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः इन कठिनाइयों को दृष्टि में रखकर उक्त ग्रन्थ के मध्यमाधिकार की दो टीकाएं-एक दीपिका नाम की संस्कृत में पण्डितों के लिए, तथा दूसरी शिखा नाम की हिन्दी में सर्वसाधारण तथा विद्यार्थियों की सुविधा के लिए-प्रस्तुत करने का मैंने प्रयास किया है। इधर कई वर्षों से हमारे प्रान्तीय और केन्द्रीय शासनों ने प्राचीन भारत तथा पाश्चात्य देशों के विज्ञान शास्त्र के ग्रन्थों का राष्ट्र भाषा हिन्दी में शीघ्र ही अनुवाद हो जाने की बात उठाई है। अतः इस दिशा में विद्वज्जनों का प्रयास अभीष्ट है। इस पुस्तक का प्रणयन राष्ट्रभाषा की समृद्धि की दिशा में एक प्रयास है।

---

* इसीलिए ज्योतिष गणित के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम 'सूर्यसिद्धान्त' या 'चक्षुसिद्धान्त' या 'ब्रह्माण्ड दर्शन कराने वाला चक्षुरूप शास्त्र का सिद्धान्त' भी रखा गया था।

भास्कराचार्य का यह ग्रन्थ ग्रहगणित का प्राण है। इसका प्रणयन उन्होंने ३६ वें वर्ष में ही कर लिया था। जिससे उनकी कुशाग्रबुद्धि का परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ से ही वर्तमान खगोलीय गणित की नींव दृढ़ हुई है। इसका मान देश-विदेश में सर्वत्र है। यह ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग का नाम लीलावती है जिसमें व्यस्त त्रैराशिक का गुणोत्तरगणित, श्रेढी के नियमों का ज्ञान, विषम चतुर्भुजों के क्षेत्रफल की विधि, चतुर्भुज कर्ण कल्पना की नियमित सीमा, छन्द शास्त्र के छन्दों का अंकगणित, असाध्य साधन करने वाले कुट्टक जैसे गणित की प्रक्रियाओं का विवेचन सरल, सरस तथा साहित्यिक वाङमय में किया गया है।

इसका दूसरा भाग बीजगणित है। लीलावती का गणित बिना इस बीजगणित की बीजाङ्कन शैली के नहीं लग सकता। अतः इस भाग में बीजगणित का सर्वाङ्गीण विवेचन किया गया है जिसमें अवर्गाङ्क अंकों के मूलों का योग और अन्तर निकालने का सिद्धान्त एक नवीन वस्तु है जैसे—

$\sqrt{८}+\sqrt{२}=\sqrt{१८}$ तथा

$\sqrt{८}-\sqrt{२}=\sqrt{२}$

दो अवर्गाङ्कों का योग और उन्हीं के गुणनफल के मूल का दूना जो हो उसका योग या अन्तर कर देने से वर्गात्मक अथवा अवर्गात्मक योगान्तर हो सकता है। यदि द्विगुणित गुणनफल का मूल न मिले तो यथा स्थित ऋण धन चिह्न से क्रमशः ऋण धन समझना चाहिये। जैसे—

$\sqrt{७} \pm \sqrt{३}$ इन दोनों के गुणनफल ७ × ३ = २१ का निर्ऽयव मूल नहीं मिलता है अतः $\sqrt{७} \pm \sqrt{३}$ यही योग या अन्तर लिखना चाहिए। यद्यपि भास्कराचार्य ने ऐसे अंकों के आसन्न मूल का भी उपाय लिखा है। जैसे—

किसी अवर्गाङ्क का भी दशमलव प्रणाली की तरह सावयव मूल निकालने के सूत्र (formula) को बताने का श्रेय भी मेरी समझ से भास्कराचार्य को ही है। जैसे, $\frac{७}{११}$ का वर्ग मूल भास्कर के सूत्र से इस प्रकार होगा।

सूत्र—वर्गेण महतेष्टेन हताच्छेदांशयोर्वधात्।

इत्यादि।

१००, १००००, १०००००० इत्यादि वर्गाङ्क में से किसी महान अंकों को इष्ट कल्पना कर लीजिये। अब हर अंश के गुणनफल को इष्ट से गुणा कर उसका स्वल्पान्तरितमूल ज्ञात कर लीजिये। स्वल्पान्तरित मूल में इष्टांक के मूल को—जिस संख्या का मूल ज्ञात करना है उसके—हर गुणित इष्ट मूल से भाग दे दीजिये। लब्धि ही उस भिन्नाङ्क का अभीष्ट मूल होगा। इस सूत्र का उपयोग $\frac{७}{११}$ का वर्गमूल ज्ञात करने में इस प्रकार होगा—मान लिया कि इष्ट १०००० है।

भिन्नाङ्क $\frac{७}{११}$ के हर अंशों का गुणनफल = ७ × ११ = ७७। इष्ट × उपरोक्त गुणनफल = ७७ × १०००० = ७७००००, इसका स्वल्पान्तरित मूल = ८७७······

अब $\frac{७}{११}$ का हर ११ है।

∴ हर × इष्ट का मूल $=११\times१००=११००$

∴ $\frac{७}{११}$ का अभीष्ट मूल $\frac{८७७}{११००}=\cdot७९७$

आधुनिक दशमलव प्रणाली से भी मूलानयन करने से इतना ही मूल होगा।

ध्यान रहे कि यदि इष्ट १०० मानेंगे तो अभीष्ट मूल दो ही स्थानों तक शुद्ध आवेगा। और १०००० इष्ट मानेंगे तो दशमलव के चार स्थानों तक मूल शुद्ध होगा।

यदि पूर्णाङ्क अवर्गाङ्क का मूल ज्ञात करना हो तो उसका हर १ मान कर उपर्युक्त क्रिया करने से वर्गमूल प्राप्त होगा।

ऐसे अनेक सूत्रों ने जिनका आज के विकसित गणित जगत में समावेश है भास्कराचार्य के बीजगणित में शताब्दियों पूर्व स्थान पा लिया था। उदाहरण के लिये—

$य^२—४५\ य=२५०$ में य का मान ज्ञात करना है—

इसके लिये आचार्य ने अपने पूर्ववर्ती श्रीधराचार्य के सूत्र

चतुराहतवर्गसमैः रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत् ।
अव्यक्तवर्गरूपैर्युक्तौ पक्षौ ततो मूलम् ॥

का उपयोग किया है।

$य^२—४५\ य=२५०$ में $य^२$ का गुणक १ है। १ को ४ से गुणा करने पर ४ हुआ। ४ से दोनों पक्ष गुणा करने से पद—

$४\ य^२—१८०\ य=१०००$ हुआ।

अब य के गुणक ४५ का वर्ग २०२५ दोनों पदों में जोड़ने से पद—

$=४\ य^२—१८०\ य+२०२५=३०२५$, हुआ।

वामभाग पद $(२\ य—४५)$ का वर्ग है।

और दक्षिण वाम पद ५५ का वर्ग है।

$\therefore २\ य—४५=\pm५५$

$\therefore २\ य=१००,\ १०$

$\therefore य=५०,\ ५$

जो आधुनिक सूत्र—

$$य=\frac{४५\pm\sqrt{४५^२+४\times१\times२५०}}{२}$$

$$वा\ य=\frac{४५\pm५५}{२}$$

वा $य=५०$, या ५

के समान है।

भास्कराचार्य ने विनोदमय कठिन प्रश्नों के समाधान की भी कल्पनायें की हैं। जैसे—

३ रुपये में ५ पारावत

५ रु. में ७ सारस

७ रु. में ९ हंस और

९ रु. में ३ मयूर मिलते हैं तो उद्यान, सरोवर और राजभवन की शोभा के लिये १०० रु. में १०० ही पक्षी लाओ।

यहाँ पर आचार्य ने पारावतादि पक्षियों का मूल्य गुणित क, ख, ग, घ कल्पना कर अनुपात से—दो पक्ष स्थापित कर अनेक वर्ण समीकरण द्वारा कुट्टक से ससूत्र गणित किया है। इसी प्रश्न के १६ प्रकार के उत्तर निकाले हैं। बिना हल के सूत्र का विस्तार दिये हुए इसका उत्तर देदेना यथेष्ट होगा। उत्तर यों है।

पारावत ५, सारस ५६, हंस २७ और मोर १२।

मूल्य ३ रु., मूल्य ४० रु., मूल्य २१ रु., मूल्य ३६ रु.,।

पाठक उत्तर की शुद्धि की गणना स्वयं कर लें। इससे भी ग्रन्थकार की अलौकिक प्रतिभा प्रकट होती है। ऐसे ही विनोदमय प्रश्न आधुनिक पुस्तक "Mathematics for Millions" जैसी पुस्तक में भी मिलते हैं।

वह कौन सा वर्गाङ्क है जिसमें ३० कम कर दें और ७ का भाग दें तो वह कट जाय। यहाँ पर कल्पना कीजिये राशि=य। आलापानुसार $\frac{य^2-३०}{७}=क \therefore य=\sqrt{७क+३०}$ अब द्वितीय पद ७क+३० का मूल कैसे मिले? इसके लिये आचार्य ने "हर भक्ता यस्य कृतिः शुद्ध्यति···न यदि पदं रूपाणाम्" क्षिपेद्धरं तेषु हार तस्टेषु तावद्यावद्वर्गो भवति··· इत्यादि। यदि व्यक्ताङ्क का मूल नहीं मिलता है तो हर से भाग देकर शेष को हर में तब तक जोड़िये जब तक मूल न मिले–ऐसा उपाय कहा है। यहाँ पर जैसे $\frac{३०}{७}$ में ७ का भाग देने से शेष=२। अतः ७+२=९ का मूल ३ अथवा २×७+२=१६ का मूल ४ हुआ अतः $य^2=(७क+४)^2$ इसलिये य=७क+४ यहाँ यदि क=१ तो य=११ आलाप मिलाने से $(११)^2=१२१$ इसमें ३० कम कीजिए १२१−३०=९१ शेष में ७ का भाग देने से यह शेष राशि कट जाती है इत्यादि और भी अनेक उत्तर होते हैं।

इसी प्रकार आयत क्षेत्र में भुज×कोटि=क्षेत्रफल होता है। इसकी विचित्र कल्पना आचार्य ने की है — जैसे वह कौन सी दो राशियाँ हैं जिनको क्रमशः ४ और ३ से गुणा कर दें दोनों के गुणनफल के योग में २ जोड़ दें तो दोनों राशियों का गुणनफल हो जाता है।

कल्पना कीजिये—दोनों राशियाँ क, और ख हैं।

∴ ४ क×३ ख+२=क. ख

यहाँ पर ख का मान इष्ट ५ मान लें—

तो ४ क+१७=५ क
∴ क=१७
अतः एक राशि=१७
दूसरी=५

आलाप से
१७×४=६८
५×३=१५
गुणनफलों का योग =८३
∴८३+२=८५=१७×५ इति।

अब इष्टवशात् अनेक मान होंगे।

जब इष्ट ख=६

४ क+२०=क ६

∴ क=१०, राशियाँ=१०,६ इस प्रकार अनेक उत्तर इस प्रश्न के हो सकते हैं।

अथवा इसका उत्तर दूसरे प्रकार से भी—वर्णों के जो अंक हैं, उनके गुणनफल में व्यक्त संख्या जोड़कर इष्ट कल्पना कर इष्ट से गुणनफल में भाग देने से एक राशि इष्ट और दूसरी राशि लब्धि होगी।

जैसे—

४ क × ३ ख + २ = क. ख

४ × ३ + २ = १४

इष्ट = १

१४ ÷ १ = १४

१	१४
४	३

इनको वर्णों के अंकों में स्वेच्छा से जोड़ दीजिये।

५	१७
१८	४

अब इष्टवशात् यहाँ भी अनेक मान होंगे। इत्यादि बीजगणित के अनेक सूत्रों (formulæ) की ये उपजें भास्कराचार्य के समय में हो गई थीं।

अब "सिद्धान्त शिरोमणि" के प्रसिद्ध तीसरे विभाग "ग्रहगणिताध्याय" की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है। इसका नाम विषय की दृष्टि से सार्थक है। इसमें सावनदिन की उपपत्ति, ग्रहों की दैनिक गति का ज्ञान, ग्रहों के भगणों का सयुक्तिक कथन, क्षयमास की वस्तु स्थिति पर प्रकाश, लघु-ज्या-साधन में स्पष्ट भोग्य खण्ड साधन, तात्कालिक गति विवरण, और गति फलाभाव का स्थान निर्देश कथन आदि स्वयं आचार्य ही की बुद्धि की उपज होने से यह अध्याय विशेष आदरणीय है। जैसे उदयान्तर गणित, सूर्य चन्द्र ग्रहण में भूभा चन्द्रमा का परमाल्प अन्तर स्थान का विचार, वलय, खण्ड, सर्वग्रासादि ग्रहण का साधन, नति, लम्बन साधन के एक प्रकार से लाने के सिद्धान्त, बिम्ब से लेकर क्रान्तिवृत्त तक स्पष्टा क्रान्ति-ज्ञान का उपाय, कभी अस्त न होने वाले, तथा बराबर उदित रहने वाले नक्षत्रों का ज्ञान, चन्द्रमा की शृंगोन्नति साधन. भूमिगोल के पृष्ठफल लाने का उपाय, जैन और बौद्ध मतों में स्वीकृत दो सूर्य और दो चन्द्रमा की उक्ति का सयुक्तिक खण्डन, गोल घनफल साधन, स्पष्ट दिन का सूक्ष्ममान कथन, ग्रहभ्रमण मार्ग निरूपण, अनन्त ब्रह्माण्ड में कौन सा स्थान है, जहाँ से कभी सूर्य अस्त न देखा जाय उस स्थान का ज्ञान, कुछ राशियाँ सदा उदित रहती हैं, कुछ कभी भी उदित नहीं होतीं, और कुछ प्रान्त (अन्तिम) से उदित होती हैं इत्यादि अति चमत्कृतखगोलीय ज्ञान प्रतिपादन, सुप्रसिद्ध ज्योत्पत्ति का कथन तथा सूर्य-चन्द्रग्रहणों में छादक ज्ञान के कारण की सुन्दर गवेषणा इत्यादि अनेक प्रसिद्ध विषय भास्कराचार्य के इस गणिता-ध्याय में निहित हैं।

वृत्त का अत्यल्प विभाग चापात्मक न होकर सरलाकार होता है। सरल रेखा में ग्रह चलते हैं। आज-कल के ऐसे अति विस्तृत और गणित जगत के परमोपयोगी चलनकलन (Calculus) नामक गणित का प्रादुर्भाव भी भास्कराचार्य की बुद्धि में हो गया था। अतः चलनकलन का आविष्कार आज से ८११ वर्ष पूर्व हो गया था, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं है।

जैसे—

ज्यार $=\frac{\text{ज्याय. म}}{\text{न}}$, और मन का मान स्थिर मानने से तात्कालिक गति चालन से

$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$. कोज्यार $=\frac{\text{कोज्याय. म.}}{\text{न}}$ ....(क)

$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}}$. कोज्यार यहां पर यदि य=मन्दकेन्द्र, म=परममन्दफ़लज्या का मान तथा न=त्रिया के तुल्य मान लें तो—"कोटीफलघ्नी मुदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्कि मृगादि केन्द्रे................" कोटिफल को मन्दकेन्द्र से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने से तात्कालिक वेग से भास्कराचार्य का मन्द फल गति मान हो जावेगा। यह चरितार्थ हो रहा है।

फिर (२) ज्यार $=\frac{\text{ज्याय. न}}{\text{ल}}$, यहाँ पर य, र, ल, मान चल हैं, तथा न मान को स्थिर कल्पना कर तात्कालिक गति चालन से—

$$\frac{\text{तार}}{\text{ताय}} \times \text{कोज्यार} = \frac{\left(\text{कोज्याय. ल.} \pm \frac{\text{ज्या}^{2}\text{ य. म.}}{\text{ल}}\right).\text{ न}}{\text{ल}_{2}}$$

इत्यादि यहाँ पर यदि य=शीघ्र केन्द्र, म=शीघ्रान्त्यफलज्या, ल=शीघ्र कर्ण तथा न=त्रिज्या मानने से फलांश खाङ्कान्तर शिञ्जिनिघ्नी—यह उपपन्न होता है। आजकल वैज्ञानिक जगत में यह हलचलयुक्त प्रसिद्धि पा चुका है कि संसार में सबसे पहिले सत्रहवीं शताब्दी में न्यूटन ने इस गणित का आविष्कार किया। यह न कहकर भास्कराचार्य के गणित को देखते हुए, भास्कर ने ही इस गणित का प्रचार किया यह मानने और कहने में किसी को क्यों संकोच होता है, यह बात समझ में नहीं आती। इसी प्रकार पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, यह बात भी भास्कराचार्य ने तभी सम्यक् प्रतिपादित कर दी थी जैसे—पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है वह ऊपर के गुरु पदार्थ को अपनी शक्ति से अपनी ओर खींचती है।

"आकृष्ट शक्तिश्च महीतया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति। समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे" ॥

*सम्भव है इन्हीं भास्कराचार्य के आकर्षणशक्ति के इस ज्ञान को सुदूर-पश्चिम के विद्वानों ने अपना मत घोषित कर दिया हो। संसार को यह भलीभांति विदित है कि अंक विद्या भारतीय ज्योतिषाचार्यों की प्रतिभा की प्रथम उपज है। वही आजकल समस्त भूमण्डल में स्वीकृत है। दशमलवादि दशमोत्तरीय बीस संख्या तक (इकाई दहाई रीति से) गिनती भी सबसे पहिले भारतीय आर्यों ने ही आविष्कृत की थी। भास्कराचार्य की सर्वशास्त्रज्ञता की सर्वतोमुखी प्रतिभा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाय, थोड़ा ही होगा।

इसी प्रकार भास्कराचार्य के समय में (ई० १११४) भारतीय खगोल शास्त्रियों को वृत्तत्व के ज्ञान के साथ-साथ दीर्घवृत्त (Ellipse) का भी ज्ञान हो गया था। वृत्त के व्यास परिधियों के और ज्या चापों के सम्बन्ध में जहाँ उन्होंने अनेक गणित प्रक्रियाएँ कही हैं वहां दीर्घवृत्त की भी एक स्थिति उनके गणित में मिल रही है। जो इस प्रकार है।

---

*इसी प्रकार पाँचवीं शताब्दि में आर्यभट्ट ने पृथ्वी ही नक्षत्र मण्डल की परिक्रमा करती है। "अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्", इस मत को स्वीकार किया है।

उदाहरण—१०० हाथ ऊँचे एक वृक्ष पर दो बन्दर बैठे थे। वृक्ष की जड़ से २०० हाथ की दूरी पर एक सरोवर था। एक बन्दर ने वृक्ष से उतर कर १००+२०० हाथ की दूरी पर तालाब में जाकर जल पिया। दूसरा कुछ ऊँचे उठकर कर्ण की दिशा से कूदकर तालाब में पानी पीने गया दोनों की यात्रा समान दूरी (३०० हाथ) की है। बताओ दूसरा बन्दर कितना उछला।

भास्कराचार्य के "द्विनिघ्न तालोच्छ्रिति" द्विगुणित ताल की (वृक्ष) ऊँचाई में वृक्ष और सरोवर का अन्तर जोड़ने से जो अंक हो उससे ताल की ऊँचाई गुणित वृक्ष ताल के अन्तर में भाग देने से उड्डीन मान हो जावेगा। यहाँ पर वृक्ष की ऊँचाई १०० हाथ × २ = २०० हाथ, इसमें वृक्ष की जड़ से सरोवर तक का अन्तर २०० हाथ जोड़ने से ४०० हाथ है।

$\frac{२०० \times १००}{४००}$ = उत्तर ५० हाथ। अर्थात् १०० हाथ पेड़ से ५० हाथ ऊँचाई जोड़ने से १५० हाथ की कोटि तथा ३००—५०=२५० कर्ण, $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{को}^2}$ = भु = २०० हाथ इत्यादि यह सिद्धान्त "द्विनिघ्नतालोच्छ्रितिसयुतं यत्सरोऽन्तरम्" दीर्घवृत्त से ही निम्नभांति उपपन्न होती हैं। जैसे—नीचे का क्षेत्र और उसकी उपपत्ति देखने से यह सब स्पष्ट होगा। इस क्षेत्र में अ से समीपस्थ ल तक की रेखा छूट गई हैं। यहाँ एक रेखा करते हुए इस ल को लं संकेत से समझना चाहिए।
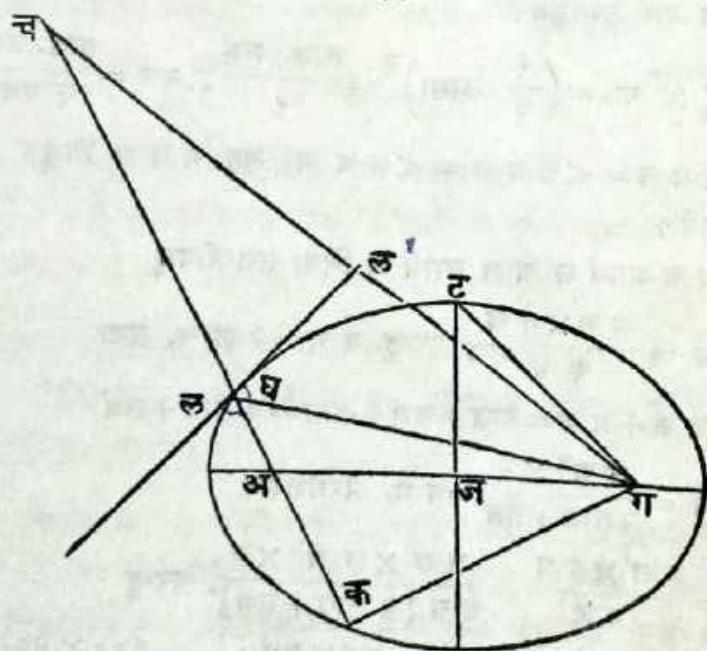
यथा श्रीभास्कराचार्य्योक्तोदाहरणम्

*वृक्षाद्धस्तशतोच्छ्रयाच्छतयुगे वापींकपिः कोप्यगा-
दुत्तीर्य्याथपरोद्रुतं श्रुतिपथेनोड्डीयकिञ्चिद् द्रुमात्॥
यातैवंसमता तयोर्यदिगतावुड्डीनमानं किय-
द्विद्वन्चेत्सुपरिश्रमोऽस्तिगणिते क्षिप्रं तदाचक्ष्वमे॥

*महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी लिखित दीर्घवृत्त लक्षण (अंग्रेजी Ellipse का अनुवाद) से उद्धृत किया है।

अत्र, अक=ताउ, कग=सअं, अघ=उड्डीन मानम् ।

अथ, अघ+गघ=अक+गक

अतो यदि, अ, ग, कस्यापि दीर्घवृत्तस्य नाभिमाने भवेतां तर्हि क, घ विन्दू दीर्घवृत्तेऽवश्यमेवाभविष्यताम् । अर्थात् यदि अ, ग, किसी दीर्घ वृत्त की नाभियां होंगी तो क और घ विन्दु अवश्य दीर्घवृत्त में होंगे ।

तदा, अक+कग=ताउ+सअं=वृव्या

वा, ताउ+सअं=२ गट

अतः

$$\frac{\text{ताउ}^{२}+\text{सअ}^{२}+२\ \text{ताउ सअं}}{४}=\text{गट}^{२}$$

एवं, $\text{अक}^{२}+\text{कग}^{२}=\text{ताउ}^{२}+\text{सअ}^{२}=\text{अग}^{२}$, $\therefore \frac{\text{ताउ}^{२}+\text{सअ}^{२}}{४}=\text{गज}^{२}$,

ततो $\text{जट}^{२}=\text{गट}^{२}-\text{गज}^{२}$

वा, $\text{जट}^{२}=\frac{\text{ताउ. सअं}}{२}=\left(\frac{१}{२}\ \text{लव्या}\right)^{२}$

अथ, घक रेखा, चपर्य्यन्तं वर्धनीया, यथा घच=घग एवं गच रेखाया ल चिन्हे समानं भागद्वयं कृत्वा तत्र लल' लम्बः कार्य्यः तदेयंरेखा स्पर्शरेखा भविष्यति घ चिन्हे, अस्याउपरि अचिन्हाच्च अल' लम्बोविधेयः

$$\text{तदा अल}' \times \text{गल}=\left(\frac{१}{२}\ \text{लव्या}\right)^{२}=\frac{\text{ताउ. सअं}}{२}\ \therefore \text{अल}'=\frac{\text{ताउ. सअं}}{२\ \text{गल}}$$

अथ <ग घ ल=<च घ ल'=<अ घ ल, अतः ग घ ल त्रिभुजं अ घ ल त्रिभुजं च, एते द्वे सजातीये ।

तथा क ग च जात्यं ल' घ च जात्यं च मिथः सजातीयम्

तदा $\text{घ च}=\frac{\text{ल च}\times\text{ग च}}{\text{क च}}$, परन्तु, ग च=२ ल च, तथा

क च=अ च+अ क=ताउ+सअं+ताउ=२ ताउ+सअं

$\therefore$ $\text{घ च}=\frac{\text{ल च}^{२}\times २}{२\ \text{ताउ}+\text{सअं}}=\text{ग घ}$, त्रैराशिकेन

$$\text{अ घ}=\frac{\text{अ ल}'\times\text{ग घ}}{\text{ग ल}}=\frac{\text{अ ल}'\times\text{ल च}^{२}\times२}{\text{ल च}\ (२\ \text{ताउ}+\text{सअं})},\ \text{परन्तु}$$

$$\text{अ ल}'=\frac{\text{ताउ}\times\text{सअं}}{२\ \text{ल च}}\ \text{अतः अ घ}=\frac{\text{ताउ}\times\text{सअं}}{२\,\text{ताउ}+\text{सअं}}=\frac{१००\times२००}{२\times१००+२००}$$

$$=\frac{२००००}{४००}=५०\ \text{यही उड्डीयमान है ।}$$

एतेन—

द्विनिघ्नतालोच्छ्रितिसंयुतं यत् सरोऽन्तरं तेन विभाजितायाः ।
तालोच्छ्रितेस्तालसरोऽन्तरघ्न्या उड्डीनमानं खलुलभ्यतेतत् ।
इति श्रीभास्करोक्तमुपपन्नं भवति ।

इत्यादि अनेक भारतीय खगोलीय ग्रह के विकासोन्मुख की स्थिति ११ वीं शताब्दी तक क्या थी ? पाठकों के समझने और विचार करने के ही ध्येय से उक्त उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं । इसके आगे यह भी जानने की बात है कि भास्कराचार्य तथा परवर्ती आचार्यों के समय ग्रह गणित का क्या रूप था ? किसी भी ग्रन्थ के निर्माण में ग्रन्थकर्ता की उससे पूर्व प्रचलित ग्रन्थ विशेष के मत पर स्वाभाविक आस्था होती है । भास्कराचार्य ने भी अपने पूर्ववर्ती सन् ६६५ ई० के ब्रह्मगुप्ताचार्य के ब्रह्मसिद्धान्त पर अपनी विशेष भक्ति प्रदर्शित करते हुए आचार्य वराहमिहिर के सन् ५०५ ई० में लिखित ग्रन्थों के मतों का भी विशेष आदर किया है । जैसा कि "सिद्धान्त शिरोमणि" के ग्रह गणिताध्याय के आरम्भ में ही लिखा है :—

कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि
जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः
कृती भवतु मादृशोप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः ॥

इसी प्रकार उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती लल्लाचार्य प्रभृति गणकों द्वारा प्रतिपादित सन् ५०० ई० के सिद्धान्तों की भी संयुक्तिक आलोचनायें स्थल विशेष पर की हैं। लल्लाचार्य के समय तक पृथ्वीगोल का गोल पृष्ठफल, गोल घनफल आदि के लाने के ढंग कुछ स्थूल थे। लल्लाचार्य के अनुसार वृत्तफल × परिधि = गोल पृष्ठफल होता है। लेकिन वास्तव में $\frac{\text{परिधि} \times \text{व्यास}}{४}$ = वृत्तफल तथा वृत्तफल × ४ = $\frac{\text{परिधि} \times \text{व्यास} \times ४}{४}$ = परिधि × व्यास = गोलघनफल होता है। यह भास्कराचार्य का गोल फलानयन सूक्ष्म है। भास्कराचार्य ने प्रौढ़ बुद्धिवाले ग्रह गोल गणितज्ञों से मध्यस्थ दृष्टि से इस पर विचार करने के लिए प्रार्थना की है कि "मेरा कथन ठीक है या नहीं"।

वृष्टं कन्दुकजालवदिलागोलेफलं जल्पितं लल्लेनास्यशतांशकोऽपि नभवेद्यस्मात्फलं वास्तवं। तत्प्रत्यक्षविरुद्धमुद्धतमिदं नैवास्तु वा, वास्तु हे प्रौढा गणकाः सुविचारयतु तन्मध्यस्थ वुद्धचा भृशम्—इत्यादि।

लगभग १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक इस शास्त्र के उपयोग की गति शिथिल रही। सन् १५२५ ई० में आचार्य मुनीश्वर ने "सिद्धान्त सार्वभौम" ग्रन्थ का निर्माण किया तथा सन् १५६८ ई० में "सिद्धान्त शिरोमणि" की "मरीचि" नाम की टीका भी लिखी। सन् १५८० ई० में कमलाकर भट्ट ने "सिद्धान्त तत्त्व विवेक" नाम के एक बृहद्गणित ग्रन्थ की रचना की जो ग्रहगणित सिद्धान्त ज्योतिष का बहुत प्रसिद्ध एवं स्तुत्य ग्रन्थ है किन्तु कमलाकर भट्ट ने "सिद्धान्त शिरोमणि" के खण्डन को ही लक्ष बनाकर अपने "तत्त्व विवेक" की रचना ४ भागों में की। इसमें उन्होंने श्री भास्कराचार्य की अकाट्य सूक्ष्म गणित उक्तियों के खण्डन करने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती भी है। तीर्थराज प्रयाग के माघ मेले के अवसर पर ज्योतिष विषयक शास्त्रार्थ में आचार्य मुनीश्वर भास्कराचार्य के "शिरोमणि" की विशेष प्रसंशा कर रहे

थे। गर्वीले स्वभाव के कमलाकर भट्ट को यह रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। शास्त्रार्थ का विषय परिष्कृत रूप से उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अन्त तक निर्णय नहीं हो पाया। सम्भवतः शास्त्रार्थ का विषय भास्कराचार्य का प्रसिद्ध उदयान्तर गणित ही रहा होगा। अन्त में भट्ट ने शास्त्रार्थ का निष्कर्ष लेकर "सिद्धान्त तत्त्व विवेक" की रचना की जिसने गणितज्ञों को आश्चर्य चकित कर दिया। इस ग्रन्थ की विशेष मान्यता १७ वीं शताब्दी तक रही, किन्तु वर्तमान काल में ज्योतिष शास्त्र में मूर्धन्य वाराणसी के महामहोपाध्याय पं० बापूदेव शास्त्री तथा महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने इस ग्रन्थ की उपादेयता को समझा और उसका पठन पाठन प्रचलित कर उसको पुनः प्रसिद्ध कर दिया। इन मनीषियों ने ज्योतिषशास्त्र की शिथिल एवं स्थूल पंचांग प्रणाली को भी नव-जीवन प्रदान किया। ज्योतिष शास्त्र में ग्रह गणित सिद्धान्त के ग्रन्थों में भी इन्होंने जो नवीनता का पुट दिया, वह सराहनीय है। पं० बापूदेव जी के शिष्य श्री विष्णुदेव ने भी "सिद्धान्त शिरोमणि" पर टिप्पणियां लिखी हैं।

ज्योतिष शास्त्र के ही आधार पर पं० सुधाकर द्विवेदी ने विश्व में ख्याति प्राप्त की। वे वाराणसेय संस्कृत कालेज में ज्योतिष के प्रधानाचार्य थे। उनके शिष्यों ने भी इस शास्त्र की सेवा में ख्याति तथा सम्मानित पद प्राप्त किये। मेरे पूज्य गुरुश्रेष्ठ स्व० पं० बलदेव जी पाठक तथा द्विवेदी जी के आत्मज पं० पद्माकर द्विवेदी भी उन्हीं के शिष्य थे। श्री पाठक जी ने काशी विश्वविद्यालय में तथा श्री पद्माकर जी ने वाराणसेय संस्कृत कालेज में ज्योतिष के प्रधानाचार्य का पद प्राप्त किया, तथा विभिन्न युक्तियों से सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अपने शिष्यों को अध्ययन कराया। इसी बीच पश्चिम के ग्रह गणित ज्योतिष (Western Astronomy) का भारतीय ज्योतिषियों को परिचय हुआ। उन्होंने इस विषय पर ग्रन्थों की रचना की तथा उन्हें ज्योतिष के पाठ्य ग्रन्थों में स्थान दिया।

भारत भूषण महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी का संस्कृत विद्या के प्रति अटूट प्रेम था। उनके प्रेम तथा आदर का ज्वलन्त प्रमाण हिन्दू विश्वविद्यालय का संस्कृत महाविद्यालय है जिसकी स्थापना उन्होंने आरंभ में ही की। संस्कृत की उन्नति के लिए महामनाजी ने प्राच्य विद्या फैकल्टी में गणित तथा फलित ज्योतिष के दो पृथक् विभागों की स्थापना की। विश्व पंचांग का सम्पादन उन्हीं के प्रयत्न से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने सुधाकरजी की भारतीय गणित परम्परा को विशेष विकसित करने के लिए गुरूजी (स्व. पं० बलदेव जी पाठक) को प्रेरित किया। उसी समय सुधाकरजी के परवर्ती विद्वानों ने "सिद्धान्त शिरोमणि" पर जो उपपत्तियाँ प्रस्तुत कीं उनपर शास्त्रार्थ में भाग लेने से मुझे भी महामना जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों के गवेषणात्मक अध्ययन का ज्योतिष के विद्वानों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। काशी के विभिन्न स्थानों पर "सिद्धान्त शिरोमणि" के प्रसिद्ध स्थलों पर शास्त्रार्थ होने लगे। उस समय की उपपत्तियाँ आज तक किसी प्रकार चली आरही हैं। उनमें से कुछ तो जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं। इन उपपत्तियों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। ग्रन्थ के अन्तस्तल में पहुँचने के लिए ये उपपत्तियां ही एक मात्र आधार हैं। जैसे उदाहरणार्थ भगणाध्याय का १३वां श्लोक लीजिये :—

"अन्तरं तराणिचन्द्रचक्रजं यद्भवेत् स विधुमाससञ्चयः
चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं चान्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः।"

पूर्वार्ध का तात्पर्य है कि सूर्य और चन्द्रमा के भगणों का अन्तर चान्द्र मास के तुल्य होता है। यह किस प्रकार होता है, इसी के कारण की खोज करनी है जिसे उपपत्ति कहते हैं। वह इस प्रकार है।

सूर्य-चन्द्रमा के योग को दर्श या अमान्त कहते हैं। जब सूर्य और चन्द्रमा एक दृष्टि-सूत्र में होंगे तब अमान्त होगा। इसी प्रकार दूसरे अमान्त तक एक चान्द्रमास होगा। क्योंकि अमान्त से अमान्त तक चान्द्रमास होता है। अर्थात् अमान्त में रवि चन्द्रमा के अन्तर अंश के अभाव से फिर अधिक गतिशील चन्द्रमा रवि को छोड़कर आगे जायेगा। इस प्रकार अपनी वर्धमान गति से आगे बढ़ता हुआ पुनः रवि के साथ योग करेगा। इस काल में एक चान्द्रमास की पूर्ति होगी। इस बीच रवि चन्द्रमा का अन्तर राशि वृत्ति की पूर्णता के तुल्य होगा। अर्थात् १ भगण के तुल्य होगा। यहाँ रविगति+चक्रकला के बराबर चन्द्रमा का चलन सिद्ध है। अतः एक भगण के तुल्य गत्यन्तर में एक चान्द्रमास होता है तो भगणान्तर तुल्य गत्यन्तर में कितने चान्द्रमास होंगे इस अनुपात से रवि चन्द्रमा के कल्प के भगणों के अन्तर के तुल्य चान्द्रमास संख्या सुखेन आ जावेगी।

उत्तरार्ध पद्य का तात्पर्य है कि चान्द्रदिन और चन्द्रभगण के योग में, नक्षत्र भगण (भभ्रम) और चान्द्रमास का योग कम कर देने से एक कल्प या इष्ट समय के क्षय दिन हो जाते हैं। ऐसा क्यों? इसके कारण की भी गवेषणा (उपपत्ति) निम्न भांति है। यहां पर चान्द्रमास=चां. मा., चन्द्रभगण=चं. भ.। चान्द्र दिन=चां. दि.। भभ्रम=भ. भ्र.। रवि भगण=र. भ.—इत्यादि शब्दों के अर्थों के द्योतक वर्णों का संकेत उन्हीं के आदि वर्णों से समझना चाहिए। इसी प्रकार समग्र ग्रन्थ में भी समझना चाहिए। आचार्य ने अपने वासना भाष्य में जो उपपत्ति लिखी है उसकी विशेष स्पष्टता यों होती है।

पहिले कह आये हैं कि रवि चन्द्रमा के भगणान्तर के तुल्य चान्द्रमास होते हैं।
क्षय दिन=चां. दि.—सा. दि. (सा. दि.=सावन दिन) अथवा

क्ष. दि.=चां. दि.+चं. भ.—चं. भ.—(भ. भ्र.—र. भ,)
= (चां. दि.+चं. भ.)—चं. भ.—भ. भ्र.+र. भ.
= (चां. दि.+चं. भ.)—भ. भ्र.—(चं. भ.—र. भ.)
= (चां. दि.+चं. भ.)—भ. भ्र.—चां. मा.
=卐(चां. दि+चं. भ.)—(भ. भ्र.+चं. मा.)卐

......卐इस अंतिम स्वरूप से चान्द्रदिन और चन्द्र भगण के योग में भभ्रम और चान्द्रमास का योग कम करने से पूर्व के क्षय दिन की तुल्यता कितनी स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रही है। अतः चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं चान्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः—यह सिद्धान्त सम्यक् उपपन्न हुआ दिखाई दे रहा है। इसका प्रकाशन परमावश्यक है जो यथाशक्ति परिश्रम के साथ ग्रन्थ की सूक्ष्म गवेषणा से किया जा रहा है। सूत्र (formula) की व्याख्या

को ही उपपत्ति कहा जाता है। ग्रह गणित में जो अनेक सिद्धान्त हैं उनका निर्माण जिस आधार पर किया गया, उसी आधार के उद्घाटन की गवेषणा का नाम उपपत्ति है जिसका स्पष्टीकरण उपरोक्त उदाहरण की तरह समग्र ग्रंथ में किया गया है।

स्कन्ध त्रयात्मक ज्योतिष में गणित ही सब कुछ है। "गणितं मूर्धिन संस्थितम्"। खगोलीय ग्रह गणित से निकले ग्रहों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही वास्तविक फल है। इसी के आधार पर फलित ज्योतिष का कार्य सक्रिय हो सकता है। आधुनिक काल में गणित के अनेक विद्वान भास्कराचार्य के गणित सिद्धान्त को बहुत ही अल्प तथा निम्न कक्षाओं के पाठ्य के बराबर का मानते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी लीलावती और बीजगणित हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट कक्षाओं तक ही सीमित रखी गई है और प्रचलित भी इतना ही अंश है। ऐसी स्थिति में यदि गणितज्ञ भास्कराचार्य की विशिष्टता को न समझ सकें तो आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु वास्तव में भास्कराचार्य का गणित यहीं तक सीमित नहीं है। उनके "सिद्धान्त शिरोमणि" का ग्रह गणिताध्याय तथा ह गोलाध्याय दोनों ही उच्च स्तर के ग्रन्थ हैं। इनके सम्यक अध्ययन से ही भास्कराचार्य की विशिष्टिता का बोध हो सकता है और यह जाना जा सकता है कि आजकल जिसको नवीन अनुसन्धान कहा जाता है, भास्कराचार्य को उसका ज्ञान ११ वीं शताब्दि में हो गया था।

मुझे आशा है कि इस पुस्तक का प्रकाशन भास्कराचार्य के गणित ज्ञान का परिचय पाने और उससे लाभ उठाने की दिशा में सहायक होगा। मैं ग्रन्थ के अन्य अंशों-स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार सूर्य ग्रहणाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, छाया-धिकार, पाताधिकार को भी हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। ग्रन्थ का एकाङ्गी ज्ञान अपूर्ण होता है। समस्त ग्रन्थ की कुल फक्किकाओं का सूक्ष्म ज्ञान आवश्यक है।

हिन्दी के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र रूपी निधि के रक्षार्थ यह पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है। सर्व साधारण भी इस शास्त्र से लाभान्वित होंगे ऐसी मुझे आशा है। मैं इसमें सर्वज्ञता का दावा नहीं करता हूँ। त्रुटियां भी हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में पाठकों से जो सुझाव मुझे प्राप्त होंगे उनके प्रति मैं आभारी होऊँगा। अगर यह लघु प्रकाशन पाठकों के लिए किंचितमात्र भी लाभदायक हुआ तो मैं अपना प्रयत्न पूर्णतः सफल समझूंगा।

मैं श्री पण्डितराज पद्मभूषण शास्त्र रत्नाकर पंडित राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ एवं भूतपूर्व प्राध्यापक, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस, सम्प्रति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय पंचांग के प्रधान सम्पादक, श्री गणपति देव शास्त्री, ज्योतिषाचार्य श्री पं० सीताराम झा, सम्मानित प्राध्यापक संस्कृत विश्वविद्यालय और काशी विश्वविद्यालय की आर्ट्स फैकल्टी के डीन तथा भारती महाविद्यालय के प्रोफ़ेसर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति प्रदान कर पुस्तक को प्रकाश में लाने के लिये मुझे प्रोत्साहित किया।

विश्वविद्यालय के अधिकारियों का मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूं जिन्होंने अपने 'वेदवेदांग प्रकाशन विभाग' से पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति देकर इसका आर्थिक भार वहन किया। विश्वविद्यालय के प्रेस मैनेजर लक्ष्मीदास जी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में जो सहयोग दिया उसके लिये भी मैं उनका आभारी हूँ। बिना उनकी सहायता के इतना शीघ्र इसका प्रकाशन सम्भव न होता।

मुझे इस बात का दुःख है कि पुस्तक में कई अशुद्धियाँ रह गई हैं। इन अशुद्धियों का शुद्धि-पत्र पुस्तक के अन्त में दे दिया गया है। मेरा अनुरोध है कि पाठक अशुद्धियों को शुद्ध कर पुस्तक का उपयोग करें।

"सतां ही वाणी गुणमेवभाषते" भारवि के इस कथन पर पूर्ण विश्वास से मनस्तोष कर विराम लेता हूँ।

इति शिवम्

केदारदत्त जोशी
प्राध्यापक—ज्योतिष विभाग
संस्कृत महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सं० २०१८ कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी
सोमवार हस्त नक्षत्र
ता० ६-११-६१

वासनाभाष्यसहितस्य सिद्धान्तशिरोमणे र्मध्यमाधिकारस्य

विषयानुक्रमणिका

इति कालमानाध्यायः

अथ भगणाध्यायः

विषयाः		पृष्ठ संख्या

इति भगणाध्यायः

अथ ग्रहानयनाध्यायः

इति ग्रहानयनाध्यायः

अथ कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः

इति कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः

अथ प्रत्यब्दशुद्धिः

इति प्रत्यब्दशुद्धिः

अथाधिमासादिनिर्णयाध्यायः

विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीमद्भास्कराचार्य्यविरचित

सिद्धान्तशिरोमणेः

वासनाभाष्यसहितः

गणिताध्यायः

दीपिकाटीकयाशिखानामक हिन्दी अनुवादेन च विभूषितः

मध्यमाधिकारः

जयति जगति गूढानन्धकारे पदार्थान्
जनघनघृणयायं व्यञ्जयन्नात्मभाभिः ।
विमलितमनसां सद्वासनाभ्यासयोगैः
अपि च परमतत्त्वं योगिनां भानुरेकः ॥१॥

जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कः? अयं भानुः सूर्य्यः किंविशिष्टः? एकः अद्वितीयः। किं कुर्वन्? व्यञ्जयन् प्रकाशयन्। कान्? पदार्थान्। काभिः? आत्मभाभिः स्वदीप्तिभिः। क? जगति। किंविशिष्टान् पदार्थान्? गूढान् अदृश्यान्। कस्मिन् सति? अन्धकारे सति। कया हेतुभूतया? जनघनघृणया। घना चासौ घृणा च घनघृणा जनानां घनघृणा जनघनघृणा तयेत्यर्थः। न केवलं घटपटादीन् पदार्थान् व्यञ्जयन् अपि च परमतत्त्वं परब्रह्म। केषाम्? योगिनाम्। कथंभूतम्? कलुषितमनोभावादज्ञानरूपेण तमसाऽतिगूढम्। किंविशिष्टानां योगिनाम्? विमलितमनसां निर्मलीकृतचेतसाम्। कैः? सद्वासनाभ्यासयोगैः। सतो ब्रह्मणो वासना सद्वासना तस्या अभ्यासयोगास्तैरमलीकृतचेतसां योगिनां परमतत्त्वं व्यञ्जयन्नेको रविरेव राजते।

शिखा—प्राणियों पर परम कृपा के कारण संसार में फैले हुए घोर अन्धकार में अव्यक्त पदार्थों को अपनी किरणों से व्यक्त करता हुआ, एवं आत्म साक्षात्कार करने की वासना से यौगिक अभ्यासों के द्वारा निर्मल मन वाले योगियों के अन्तःकरण में परम तत्त्व को भी व्यक्त करता हुआ यह सूर्य अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है।

समीक्षा—ब्रह्मसृष्टि में सूर्य प्राणस्वरूप है क्योंकि सूर्य की ज्योति से हम घटपटादि का दर्शन करते हैं। सूर्य की शक्ति एवं गुणों का वर्णन हमें वेदों में स्पष्ट उपलब्ध है। जिसे हम देना आवश्यक समझते हैं, "तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वाउपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्। आणि नरममृताधि तस्थुरिदु ब्रवीतु य उन्नच्चिकेतत्।" (ऋ० म० १ सू० ३५ मं० ६)

उक्त मन्त्र में सूर्य की आकर्षण शक्ति वर्णित है। यह शक्ति चन्द्र नक्षत्रादि को अवलम्बित किये है। पृथ्वी का आधार भी सूर्य की आकर्षण शक्ति है। कालावयव अर्थात् अहोरात्रादि का परिज्ञान भी सूर्य के कारण है जो "अनुकृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य" इत्यादि मन्त्र से स्पष्ट होता है। सूर्य की महिमा ही से अहोरात्र रूपी सृष्टिघन का क्रमिक विकास होता है। सूर्य से केवल अहोरात्र का ही परिज्ञान नहीं होता है अपितु अन्धकार के दूरी करण के साथ साथ किरणों द्वारा रोग निवारण भी होता है जो ऋग्वेद के मंत्र से व्यक्त है "हिरण्यपाणिः सविता" (ऋ० म० १ सू० ३ म० ९, मं० १ म० २।)

अव प्रश्न उत्पन्न होता है कि जगत के दो चक्षु हैं सूर्य और चन्द्रमा, इस कथन से सूर्य और चन्द्रमा की समता है, अतः चन्द्र का भी नाम भास्कराचार्य को इस मंगल श्लोक में देना चाहिए था। 'भास्कराचार्य', ज्योतिष-सिद्धान्त-गणित के प्रकाण्ड विद्वान् थे, वे आकर्षण सिद्धान्त तक के भी—जो आज के वैज्ञानिकों का गर्व है—मर्मज्ञ थे। चन्द्र का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के कारण है जो वेदद्वारा भी सिद्ध है "अत्राऽहगौरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे सुषुम्नः सूर्यरश्मिः" इत्यादि। दार्शनिकों की दृष्टिमें भी सूर्य का प्रकाश ज्ञानज्योति के रूप में मानागया है और ब्रह्म की प्रथम शक्ति भी सूर्य-ज्योति के रूप में है। ब्रह्म की सत्ता दार्शनिकों की दृष्टि में निम्न प्रकार है :—वेदान्तियों का ब्रह्म अव्यक्त "नित्यं विभु सर्वगतं सुसूक्ष्मम्" (मुण्डकोपनिषद् १।१।६) और सांख्यों का पुरुष करचरणादिहीन नाशरहित अनादि सत्तावान् है।

"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" (कठो० २।१८)

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ० १।१६४।४६)

ब्रह्म के अतिरिक्त और सब अनित्य एवं क्षणभंगुर है, ऐसा श्रुतियों द्वारा व्यक्त होता है। 'यो वै भूमा तदमृतम् यदल्पं तन्मर्त्यम्' (छा० ७।२४।१) 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किञ्चना-मिषत्' (ऐ० १।१।११) सांख्याचार्यों ने भी अपनी सम्मति इसके पक्ष में दी है।

"हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ (सांख्य का० १०)

ब्रह्मा सृष्टि सृजन करता है और सूर्योदय से समस्त जगत् स्वकीय विभिन्न कार्यों का प्रारम्भ करता है, अतः सूर्य का ब्रह्मस्वरूप होना स्वयं सिद्ध है। ब्रह्मसाक्षात्कार से अज्ञान मोहादि का दूरीकरण होता है और अनन्त प्रकाश को योगी प्राप्त करता है। इसी

प्रकार संसार में रात्रिरूपी अन्धकार का विनाश कर सूर्य का प्रकाश मानवों के हित के लिये होता है। अतएव सूर्य की ही स्तुति सर्वप्रथम उचित है।

अथ निजकृतशास्त्रे तत्प्रसादात् पदार्थान्
शिशुजनघृणयाहं व्यञ्जयाम्यत्र गूढान्।
विमलितमनसां सद्वासनाभ्यासयोगै-
र्हृदि भवति यथैषां तत्वभूतार्थबोधः॥
वासनावगतिर्गोलानभिज्ञस्य न जायते।
व्याख्याताः प्रथमं तेन गोले या विषमोक्तयः॥

शिखा—इस जगत् की आत्मा सूर्य की महती कृपा से रचित इस सिद्धांतशिरोमणि नामक अपने ग्रथ में शास्त्रज्ञान रहित अबोध बालकों के उद्धार के लिये उन गूढ़ भावों की स्पष्ट व्यञ्जना करता हूँ जिनके ज्ञान से स्वच्छ मन वाले योगियों को ब्रह्मोपासना में योगाभ्यास से उत्पन्न तत्वभूत अर्थ का बोध हृदय में अच्छी तरह से हो जाता है।

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतां मनोवाक्कायैर्नमस्कृत्य तस्यास्सकाशादभीष्टार्थस्याऽऽ-शंसनमाह—

यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनीबन्धौ समभ्युद्गते
ध्वान्तध्वंसविधौ विधौतविनमन्निःशेषदोषोच्चये।
वर्तन्ते क्रतवः शतक्रतुमुखा दीव्यन्ति देवा दिवि
द्राङ् नः सूक्तिमुचं व्यनक्तु स गिरं गीर्वाणवन्द्यो रविः॥२॥

व्यनक्तु प्रकाशयतु। कः? सः। स कः? रविः सूर्य्यः। काम्? गिरं वाचम्। केषाम्? नः अस्माकम्। किंविशिष्टां वाचम्? सूक्तिमुचं सूक्तिं मुञ्चतीति सूक्तिमुक् तां सूक्तिमुचम्। कथम्? द्राक् झटिति। किंविशिष्टो रविः? गीर्वाणवन्द्यः। गीर्वाणा देवास्तैर्वन्द्यः इति गीर्वाणवन्द्यः पुनः किंविशिष्टो रविः? यत्र यस्मिन् रवाविदं जगत् त्रातुं रक्षितुं निशि मृतपतितमिवोत्थापयितुं समभ्युद्गतेऽस्यां पृथिव्यां समभितः समन्तादुद्गते सति वर्तन्ते प्रवर्तन्ते। के क्रतवः यज्ञाः; पञ्च महायज्ञा दर्शपौर्णमासयागज्योतिष्टोमादयः। यत्र यत्र यदा यदा स भगवानुदेति तत्र तत्र तदा तदा यज्ञाः प्रवर्त्तन्त इत्यर्थः। समभ्युद्गत इत्येवं वदताऽऽचार्य्येणोदितहोमिनामेव पक्षोऽङ्गीकृत इति नाऽऽशङ्कनीयम्। यतोऽनुदितहोमिनामप्युदयात् प्रागासन्न एव यागकाल इति भावः। न केवलं यज्ञाः प्रवर्तन्ते, अत एव कारणाद्दीव्यन्ति च क्रीडावन्तो द्योतन्ते। क? दिवि स्वर्गे। के? देवाः। किंविशिष्टाः? शतक्रतुमुखा इन्द्रादयः। यतस्ते यज्ञांशभुजः। पुनः किंविशिष्टे रवौ? ध्वान्तध्वंसविधौ। ध्वान्तमन्धकारस्तस्य ध्वंसं विदधातीति ध्वान्तध्वंसविधिस्तस्मिन्। पुनः किंविशिष्टे? विधौतविनमन्निःशेषदोषोच्चये। विधौतः प्रक्षालितो विनमतां प्रणतानां निःशेषदोषोच्चयः सकलपापसमूहो येन असौ

विधौतविनमन्निःशेषदोषोच्चयस्तस्मिन्। पुनः किंविशिष्टे? जलजिनीबन्धौ कमलिनीबन्धौ। अत्र जलजिनीशब्देन कुमुदिन्यपि गृह्यते। यतस्तामपिचन्द्रबिम्बसङ्क्रान्तैः स्वरश्मिभिरेवोल्लासयतीति। एवं जलजस्थलजादीनां त्रैलोक्योदरवर्त्तिनामुपकारप्रकृतिः स गिरं दिशतु। अहो एवंविशिष्टादपि भगवतः सूर्य्यात् किं वाङ्मात्रस्याऽऽशंसनं कृतम्? सत्यं तदप्युच्यते। इह हि कवीनां काव्यरचनोद्यतानां सद्वाक्यप्रवृत्तिरेवाभीष्टमिति भावः।

शिक्षा—मनोरथ सिद्धि हेतु अभीष्ट देव सूर्य को नमस्कार किया गया है। देवताओं से बन्दनीय तथा स्वर्गलोक में अन्धकार का दूरीकरण करने वाले जगत् के रक्षक सूर्य के उदय होने पर शतक्रतुमुख इन्द्रादि देवों के प्रीत्यर्थ यज्ञारम्भ होता है और जिसके कारण अखिल दोषों (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तथा मानव कृत त्रुटियों एवं पापों का विनाश होता है। कमल के बन्धन को प्रस्फुटित करने वाले सूर्य भगवान् सूक्तियुक्त हमारी वाणी का शीघ्र प्रकाशन करे।

समीक्षा—प्रस्तुत श्लोक में भास्कराचार्य ने सूर्य की शक्ति का वर्णन किया है कि सूर्योदय में लोक स्वकीय कार्यों में संलग्न हो जाता है। अज्ञान रूपी रात्रि का निवारण सूर्य रश्मियों द्वारा होता है जो लोक में प्रत्यक्ष है। अज्ञानावस्था में ही मनुष्य पाप कर्म में रत रहता है और चैतन्य ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् पापों से मुक्त होने के उपाय सोचता है। पापों से मुक्त होने का उपाय यज्ञ कर्म में प्रवृत्त होना है। यज्ञों का उपदेश वेदों में सम्यक् रूप से वर्णित है और सूक्तों की ऋचाओं द्वारा तद्तद् देवताओं की स्तुतियां की गई हैं। यज्ञों का विधान दिन में है रात्रि में नहीं। दिन रात का परिज्ञान सूर्य गति सेहोता है क्योंकि सूर्य रश्मियों से दिन का वर्णन आया है और यज्ञ का भी। आगे चलकर भास्कराचार्य ने स्वयमेव ज्योतिष का प्रयोजन "वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्तेतु कालाश्रयेण"—इत्यादि में यज्ञ में काल निर्णय के लिये उद्धृत किया है। वृष्टि सस्यादि प्रवर्धन के उपयुक्त है और वृष्टि के देवता इन्द्रादि माने गये हैं अतः उन्हें यज्ञ से प्रसन्न कर सकते हैं। यागफल सूर्योदय से प्रागासन्न माना गया है। भास्कराचार्य ने स्वयं "शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी"—इत्यादि श्लोक द्वारा ज्योतिष महत्त्व को ज्ञानरूपी मूर्तिमान नेत्र के रूप में प्रतिपादित किया है। नेत्रों से घटपटादि दृष्टिगोचर होता है। पर अविकाराभाव में अन्धकार का दूरीकरण सूर्य के द्वारा होता है। साहित्यिक दृष्टि से भी कविपरम्परा में प्रचलित है कि सूर्य की रश्मियाँ कमल को प्रस्फुटित करती हैं। कमल और सूर्य के सम्वर्धन होने के कारण भास्कराचार्य की साहित्य विषयक प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है।

इदानीं पूर्वाचार्य्याणां प्रशंसनं सविनयमाह—

कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि-
र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः
कृतीभवति मादृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः ॥३॥

स्पष्टार्थमिदम् ।

शिखा—पूर्वाचार्यों की प्रशंसा—शास्त्रमर्मज्ञ गणकचक्रचूडामणि ब्रह्मगुप्ता चार्य और ललित उक्तिपूर्ण एवं विस्तृत तन्त्रज्ञानमर्मज्ञ वराहमिहरादि आचार्यों की प्रसिद्ध कृतियों का अच्छी तरह अवलोकन करके मुझ जैसा तन्त्रज्ञानशून्य एवं अल्पबुद्धिवाला व्यक्ति ज्तोतिषतन्त्र-शास्त्र के निर्माण में समर्थ होता है।

समीक्षा—विद्वद् परम्परा रूढ़ि का पालन किया गया है क्योंकि विद्वान् पूर्वाचार्यों के मार्ग का अनुसरण करता है लोकदृष्टि में भी प्रचलित है कि "महाजनो येन गतः स पन्थाः" महाजनों के पथ पर आरूढ़ होना हितकारक है। कालिदास ने भी अपने रघुवंश आदि में अपनी अल्पबुद्धि और कवियश की चर्चा है जैसे "मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः"। भास्कराचार्य ने भी नम्रता द्वारा स्वयं को अल्पज्ञ कहा है, विद्वान् की शोभा नम्रता से होती है अल्पज्ञ ही जिज्ञासु होता है और स्वयं को विज्ञमानने वाला व्यक्ति अवश्य अधःपतन का भागी होता है।

गणित के तीन भेद होते हैं—(१) सिद्धान्त (२) तन्त्र (३) करण।

(१) **सिद्धान्त**—जिस गणित के द्वारा कल्पादि से आरम्भ कर, वर्त्तमान काल तक खगोलीय ग्रहस्थितिवश गताब्द मास दिन और सौर सावन चान्द्रमान को जानकर, सौर अहर्गण बनाकर, मध्यमग्रहादिस्पष्ट कर्म किया जाता है उसे सिद्धान्त कहते हैं।

(२) **तन्त्र**—जिस गणित द्वारा वर्त्तमान युगादि वर्षों को जानकर किसी इष्ट समय का मध्यादि ग्रहगत्यादि चमत्कार देखा जाता है उसे महर्षियों ने तन्त्र कहा है।

(३) **करण**—किसी गत समय से वर्त्तमान इष्ट समय तक अहर्गण जानकर तथा पूर्वानीत ग्रहों का इस अहर्गणसे लाये ग्रहों के साथ योग आदि कर जिस ग्रहसाधन की प्रक्रिया जिन ग्रन्थों में वर्णित होती है उन्हें करण ग्रन्थ कहते हैं।

इदानीमात्मनः कर्तृत्वस्यारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थमाह—

कृत्वा चेतसि भक्तितो निजगुरोः पादारविन्दं ततो
लब्ध्वा बोधलवं करोति सुमतिप्रज्ञासमुल्लासकम्।
सद्वृत्तं ललितोक्तियुक्तममलं लीलावबोधं स्फुटम्
सत्सिद्धान्तशिरोमणिं सुगणकप्रीत्यै कृती भास्करः ॥३॥

इदमपि सुगमम्।

शिखा—मैं भास्कराचार्य अपने गुरु (पिता महेश्वराचार्य) के चरण कमलों का चित्त में भक्तिपूर्वक ध्यान करके, उन्हीं के चरणों से प्राप्त ज्ञान लव के द्वारा, बुद्धिमानों की बुद्धि का प्रकाशक, उत्तमछन्दों और सुन्दर युक्तियों से भूषित, दोषरहित, सरलता से अच्छी तरह समझ में आने वाले इस स्पष्ट सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ को सरस विज्ञ ज्योतिषियों की प्रीति के लिये बनाता हूं।

इदानीं ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्द्धे नाभिधायोत्तरार्द्धेन सुजनगणकान् प्रार्थयन्नाह—

कृता यद्यप्याद्यैश्चतुरवचना ग्रन्थरचना
तथाऽप्यारब्धेयं तदुदितविशेषान् निगदितुम् ।
मया मध्ये मध्ये त इह हि यथास्थाननिहिता
विलोक्यातः कृत्स्ना सुजनगणकैर्मत्कृतिरपि ॥४॥

आद्यैराचार्यैर्यद्यपि चतुरवचना श्लक्ष्णा ग्रन्थरचना कृता, तथापि मयाऽऽरब्धा। इदमः प्रस्तुतनिर्देशादियमीदृशी चतुरवचना अचतुर वचना वा; यद्यचतुरवचना तर्हि किमारम्भणीया ? तदर्थमाह—तदुदितविशेषान् निगदितुमिति—यत् तैरुदितं तत् तदुदितं तस्माद् ये विशेषास्ते तदुदितविशेषाः। ये तैर्नोक्ता इत्यर्थः। अथ सुजनान् प्रत्याह—सुजनाश्च तेगणकाश्च सुजनगणकास्तैरियं मत्कृतिरपि विलोक्या। अपिशब्दः समुच्चयार्थे। तेन हे सुजनगणकाः! भवद्भिर्ब्रह्मादीनां कृतयः किल विलोकिताः। इदानीं मत्कृतिरपि मदुपरोधेन विलोक्या। यदि विलोक्या तर्हि कृत्स्ना समग्रा। किमिति ? हि यस्मात् कारणात् ते विशेषा इहास्मिन् ग्रन्थे मया मध्ये मध्ये यथास्थानं यथाऽवसरं निहिता निक्षिप्ताः। कृत्स्नग्रन्थविलोकनेन विना सर्वे न ज्ञायन्त इत्यर्थः।

शिक्षा—पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त ग्रन्थों में कहीं कहीं अस्फुटता होने के कारण काठिन्य का अनुभव होगा अतः सरल एवं स्फुट सिद्धान्त शिरोमणि को प्रस्तुत करता हूँ।

यद्यपि पूर्वाचार्यों ने युक्तिपूर्ण वचनों द्वारा सिद्धान्त ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं, फिर भी मैं अपने नूतन ग्रन्थ में इसी विषय को परिपक्व कर रहा हूँ इस पुनरुक्ति दोष का दूरीकरण आचार्य स्वयं करते हैं। आचार्यों द्वारा नहीं कही गई जो विशेष फक्किकाएँ हैं, (जिन पर दृष्टि नहीं डाली गई है) उन्हें मैंने अपने ग्रन्थ में बीच-बीच में यथास्थान निहित किया है। सुजनगणकों के द्वारा मेरे ग्रन्थ में समग्र विषय की पूर्णता देखी जाएगी। समस्त ग्रन्थ परिज्ञान के अभाव में वास्तविक सिद्धान्त का परिचय अच्छी तरह से नहीं मिल सकता है। अतः आचार्य अनुरोध करता है कि मेरे इस समग्र ग्रन्थ का अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए।

इदानीं सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनमाह—

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान् ।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ॥५॥

सुजना इति विशेषणं किम् ? यतो दुर्जनाः स्वतस्तोषमेष्यन्ति यदा दुर्जना मदुक्तान् विशेषान् द्रक्ष्यन्ति, तदा तानज्ञात्वा दौर्जन्येन सञ्छन्नमतयो विषेषार्थान् न बुध्यन्ति, तेनाबोधेन मदुक्तिमेव विरुद्धां मन्यमानाः सहर्षाः; किं तेन कविना विरुद्धमुक्तमिति मामेव हसन्तस्तोषमेष्यन्ति। न हि तोषं विना हास्यमुत्पद्यत इति भावः।

शिक्षा—सुजनों से प्रार्थना करते हुये उद्देश्य बताते हैं। मेरी कथित विशेषताओं को जानकर सुजन (सहृदय) विद्वानों को सन्तोष होगा और अज्ञानवश उन विशेषताओं में

दोष देखने वाले दुर्जन (मूर्खों) को उपहास करके सन्तोष की प्राप्ति होगी। अतः दोनों व्यक्तियों को आनन्द की अनुभूति होगी, यह अनुमान करके मुझे सन्तोष होगा।

अथानन्तरश्लोकेन सिद्धान्तग्रन्थलक्षणं, श्लोकद्वयेन सिद्धान्तप्रशंसां चाह—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ॥६॥

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः ॥७॥

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताऽश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतचूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्न भात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः ॥८॥

स्पष्टम्।

शिखा—ज्योतिषशास्त्र के तीन स्कन्धों में (सिद्धान्त संहिता होरा) सिद्धान्त स्कन्ध मुख्य है। जिस स्कन्ध में त्रुटि से लेकर प्रलयान्त काल की गणना, और चान्द्र, नाक्षत्र, सौर, सावन, आदि मानों का प्रतिपादन, ग्रह गणित का निरूपण, अंकगणित, रेखागणित, बीज गणित, ज्यागणित, चापीयगणित, त्रिकोणमितिकगणित, दीर्घवृत्तादिगणित, चलनकलन-गणित, ग्रहगोल, खगोल, भगोलादि का सगणित विशिष्ट परिचय, विविध प्रश्न और उनके उत्तर तुरीय, घट, कपाल, फलक, यष्टि, घटी, होरा प्रभृति अनेक यन्त्रों का सविस्तार वर्णन हो उसे सिद्धान्त स्कन्ध या गणित स्कन्ध कहते हैं।

गणित स्कन्ध के ज्ञान से शून्य होते हुये जातक या संहिता को जानने से कोई भी ज्योतिषी, विज्ञ गणितज्ञों के प्रश्नों को नहीं समझ सकता और अनन्त युक्तियों से सुचमत्कृत सिद्धांत को नहीं समझ सकता। ऐसे एक देशीय ज्ञान वाले ज्योतिषी से कोई प्रयोजन सफल नहीं हो सकता, जैसे किसी दिवाल में बनाई गई राजा की मूर्त्ति से, अथवा काठ के निर्मित सिंह से कोई प्रयोजन सफल नहीं हो सकता। ऐसे ही घोड़े, ऊंट, रथ आदि से सुसज्जित राजा की सेना हाथियों के बिना सुशोभित नहीं होती, तथा रसमय आम्रवृक्ष के न होने से किसी भी बगीचे की सुन्दरता नहीं होती, सुन्दर सरोवर का निर्माण जल के बिना जैसे व्यर्थ है, पति के विदेशस्थ होने से सुन्दर रूपवती नवपरिणीता वधू के मुख मण्डल की शोभा, जैसे नहीं होती, ठीक इसी प्रकार यह ज्योतिषशास्त्र भी बिना सिद्धान्त स्कन्ध के सुशोभित नहीं होता। तात्पर्य यह है कि सिद्धान्तज्ञान से वञ्चित ज्योतिषी से ऐहिक और पारलौकिक कृत्यों में वञ्चना ही हो सकती है।

इदानीं ज्योतिश्शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं निरूप्य वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यै श्शूद्रादिभिरित्येतत्प्रतिपादनार्थं श्लोकचतुष्टयमाह—

वेदास्तावद् यज्ञकर्म्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद् वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात् ॥९॥
शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ॥१०॥
वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥११॥
तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमञ्च तत्वम्।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥१२॥

स्पष्टम्

दीपिका—शब्दानां सदसद्विवेको येन शास्त्रेण जायते तदेव शब्दशास्त्रं मुख्यम्मुखमिति। वैदिकं लौकिकञ्चाखिलकार्यव्यापारमात्रस्य समयाधीनत्वात्तद् ज्ञानं येन शास्त्रेण भवति तज्ज्योतिषम्। साक्षिभूतेन वर्तमानत्वादिह नेत्रसंज्ञा समीचीना-नेत्रेन्द्रियस्य शरीरे सर्वोपरि स्थितत्वाल्लगधाचार्येणाऽप्युक्तम्।

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम् ॥"

अत्रावसरे—सोमाकरभाष्योक्त पद्यमप्युल्लेखार्हम्—यथा

मन्त्रपादपदसन्धिविधिज्ञः धातुनामवचनप्रकृतिज्ञः।
ईदृशो भवति यज्ञविधिज्ञः पक्षमासतिथिचन्द्रगतिज्ञः ॥

इति स्पष्टम्—

शिक्षा—यागादिकों का समग्र विधान वेदों में प्रतिपादित है। ये समय के अधीन हैं। समय का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र से होता है। इसलिये ज्योतिष को वेद का अंग कहा है। साक्षीभूत, वर्त्तमान होने से वेद के षंडगों में ज्योतिष नेत्र स्थानीय हुआ, निरुक्त को कर्णस्थानीय कहा है, शिक्षा को नासिका स्थान में। कल्प को वेद पुरुष का 'कर' (हाथ) स्थानीय कहा है, छन्द को पाद स्थानीय। इस प्रकार इन उक्त छै अंगों से शब्दब्रह्म का स्पष्ट स्वरूप ज्ञात होता है। अथवा इन छै अंगों के ही ज्ञान से वेद का ज्ञान होता है। वेद का नेत्र होने से यह ज्योतिषशास्त्र भी वेदांग है अतः वेद की ही तरह मान्य है। आचार्य का यही अभिप्राय है। इसलिए इस परं पवित्र रहस्यमय परमतत्व रूप ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए—जो पुरुष ज्योतिषशास्त्र को जानता है वही धर्म, अर्थ, काम और यश को अथवा धर्मादि चतुर्वर्ग को प्राप्त करता है।

इदानीं ज्योतिःशास्त्रमूलभूतस्य सग्रहस्य भचक्रस्य चलनं श्लोक द्वयेनाह—

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन ग्रहैः सहैतद् भगणादिसंस्थैः।
शश्वद्भ्रमे विश्वसृजा नियुक्तं तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे ॥१३॥

ततोऽपराशाभिमुखं भपञ्जरे सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि।
तदल्पगत्येन्द्रदिशं नभश्चराश्चरन्ति नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु ॥१४॥

यदेतद्भचक्रं ग्रहैः सह भ्रमद् दृश्यते, तद्विश्वसृजा जगदुत्पादकेन कमलोद्भवेन ब्रह्मणा सृष्ट्यादौ सृष्ट्वा ततः शश्वद्भ्रमेऽनवरतभ्रमणे नियुक्तम्। एतदुक्तं भवति। अश्विन्यादीन्यन्यानि विशिष्टानि ज्योतींषि तेषां समूहश्चक्रं ग्रहाश्च सूर्य्यादयस्तैः सह सृष्टम्। तानि भानि प्राक्संस्थया समन्तान्निवेशितानि। ग्रहास्तु भगणादावश्विनीमुखे निवेशितास्त उपर्य्युपरिसंस्थया। तत्रादौ तावदधश्चन्द्रः। तदुपरि बुधः। ततः शुक्रः। ततो रविः। तस्माद्भौमः*। ततो गुरुः। ततः शनिः। सर्वेषामुपरि दूरे भचक्रम्। एषां कक्षाप्रमाणानि कक्षाध्याये प्रतिपादयिष्यन्ते। ननु यदूर्ध्वोर्ध्वस्था ग्रहास्तदुपरि दूरतो भगणः, तत् कथं भगणादिसंस्थैर्ग्रहैरित्युच्यते? सत्यम्। अत्र भूमध्ये सूत्रस्यैकमग्रं बद्धा द्वितीयमग्रं भचक्रेऽश्वनीमुखे किल निबद्धम्। तस्मिन् सूत्रे प्रोता मणय इव चन्द्रादयो ग्रहाः सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा निवेशिताः। भमण्डलं द्वादशधा विभज्यैवं भूमध्यात् सूत्राणि प्रतिभागं नीत्वा किल बद्धानि, तै सूत्रैः सह ग्रहकक्षायां ये सम्पातास्ते तासु कक्षासु राश्यन्ताः। तदनुप्रकारा राशय इति सङ्क्षिप्तमिहोक्तम्। कक्षाध्याये गोले च किञ्चिद्विस्तार्य वक्ष्यामः। एवंविधं भचक्रं सृष्ट्वा ब्रह्मणा गगने निवेशितम्। यत्र निवेशितं तत्र प्रवहो नाम वायुः। स च नित्यं प्रत्यग्गतिः। तेन समाहतभचक्रं सखेचरं पश्चिमाभिमुखभ्रमे प्रवृत्तम्। यत् तस्य प्रत्यग्भ्रमणं तच्छीघ्रतरम्। यत एकेनाह्ना भमण्डलस्य परिवर्त्तः। एवं तस्मिन् भपञ्जरे सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि खेचरा इन्द्रदिशं चरन्ति पूर्वाभिमुखं व्रजन्ति। नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु। अनन्तरकथितेषु स्वस्वमार्गेषु तेषां प्राग्भ्रमणम्। तत् तदल्पगत्या। प्रत्यग्गतेर्बहुत्वात् प्रागल्पगत्या व्रजन्तो नोपलक्ष्यन्त इति भावः। तथा तस्य भपञ्जरस्य यौ दक्षिणोत्तरावन्तौ तत्र वै तारे ते ध्रुवत्वे नियुक्ते।

दीपिका—अष्टोत्तरशत संख्याकं सप्तविंशतिनक्षत्र चरणसहितं समद्वादश-स्रमिदं भचक्रं तस्यान्तौ (राशिवृत्तम् क्रान्तिवृत्तसंज्ञकम्) दक्षिणोत्तरनेमि सम्बन्धिनोस्तयोर्ये तारे नक्षत्रं तथा ते ध्रुवत्वे नियुक्ते। अन्यद् भाष्ये स्फुटम्।

शिखा—जगत् के उत्पादक सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने मेषादि विन्दु पर स्थित सब ग्रहों से युक्त इस राशि वृत्त की रचना कर इसे निरन्तर भ्रमणशील बनाया और इस राशिवृत्त के उत्तर और दक्षिण ९०° (नब्बे अंश) की दूरी पर दोनों ध्रुवों की रचना की। अर्थात् उत्तर ध्रुव से १८०° की दूरी पर याम्योत्तर वृत्त में दक्षिण ध्रुव की स्थिति बनाई।

पृथ्वी आकाश में जिस मार्ग से सूर्य की परिक्रमा कर रही है उस मार्ग का नाम पृथ्वी कक्षा है। पृथ्वी कक्षा के ऊपर एक ओर क्रमशः चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र और सूर्य हैं और दूसरी ओर गुरु, शनि आदि ग्रहों की कक्षाएँ हैं और इन सबके ऊपर आकाश में

* अत्र आचार्य महोदयस्य ग्रहाणां कक्षा विषये भ्रमः प्रतीयते, तच्च शिखायां स्पष्टीकृतंमया द्रष्टव्यम्।

अनन्त दूरी तक नक्षत्रों की अनेक कक्षाएँ हैं—नवीन और प्राचीन मतों का इसमें सामञ्जस्य है। यह नक्षत्र मण्डल अपने सौर मण्डल के साथ २४ घण्टे में आकाश की एक परिक्रमा करता है। किन्तु ये उक्त ग्रह अपनी उच्च, नीच की स्थितियों से, पूर्वापर की स्थितियों से तथा ऊर्ध्वाधर की स्थितियों से पूर्व की ओर (अपनी अपनी आकर्षणात्मक गति से) जाते हैं। जिसकी कक्षापरिधि कम है उसकी गति, अधिककक्षापरिधि में भ्रमणशील ग्रह की अपेक्षा अधिक है। जैसे चन्द्रमा की कक्षा का व्यासार्ध सबसे छोटा होने से वह २९ दिन २१ घण्टे में ही अपना एक भगण पूरा कर लेता है इत्यादि।

इदानीमनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिमाह—

लङ्कानगर्य्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१५॥

ननु पूर्वटीकायामनादिरनन्तश्च कालोऽभिहितः; अथ च सृष्ट्यादौ तस्य प्रवृत्तिः। प्रवृत्तिर्नाम आदिः। प्रलये तदन्तः। तथा च शास्त्रान्तरे।—

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत् ॥इति॥

तत् कथमनाद्यनन्तः काल उच्यते? सत्यम्। योऽयं भगवान् मूर्त्तो व्यापकश्च कालस्तस्य प्राक्तनप्राकृतिकलयादनन्तरं व्यक्तिजनकानां सूर्य्यादीनामभावादव्यक्तत्वाव्यक्ते यदवस्थानं स तस्य लय उच्यते। नत्वात्यन्तिकः प्रलयः कालस्याऽस्तीति। यत् तूक्तम्—"कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाऽव्यक्ते लयं व्रजेत्" इति तत् तेनेवाऽव्यक्तावस्थानाभिप्रायेण। अतो युक्तमनाद्यनन्तत्वं तस्योक्तम्। तस्याऽव्यक्तस्य कालस्य सृष्ट्यादौ व्यक्तिजनकानां भग्रहाणां प्रादुर्भावे सति कालस्य व्यक्तीनामपि दिनमासवर्षयुगादीनां युगपदेकहेलया प्रवृत्तिर्बभूव। एतदुक्तं भवति। चन्द्रार्कयोर्मेषादिस्थयोश्चैत्रस्य शुक्लपक्षादिः प्रतिपत्। अतो मधोः सितादेर्दिनानां सौरादिमासानां वर्षाणां युगानां मन्वन्तराणां कल्पस्य च तदैव प्रवृत्तिः। अथोदयाच्च भानोः। स चोदयः कस्मिन् देशे? लङ्कानगर्याम्। तथा तस्यैव वारे। आदित्यवार इत्यर्थः।

दीपिका—अनेनैव भास्कराचार्येण गोलाध्याये—लङ्का कुमध्ये यमकोटि रस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनञ्चाधः सिद्धपुरमित्याद्युक्तम् (भूगोलाध्याये)। नाडीवृत्तधरातले वृत्तचतुर्थांशे नगरचतुष्टयस्य (यमकोटि लङ्का रोमक पत्तन, सिद्धपुर) स्थितिरस्तीति गोलदर्शनेन स्फुटम्। स्वाहोरात्रवृत्ते यत्र रविरस्ति तत्र यदि कस्यापि नगरस्य क्षितिजं भवेत्तदा तत्र देशे रवेरुदयो जात इति वक्तुं शक्यते। अतः यदा यमकोट्यां रविरस्ति तत्रैव लङ्काक्षितिजमपि अस्ति स्वसूत्रमध्यात्रवत्यंशव्यासार्धेन विरचीयमानं यद्वृत्तं तदेव क्षितिजाख्यमिति परिभाषया यमकोटिखमध्यगतस्य रविबिम्बस्य लङ्कायामुदयत्वेन कथनं सयुक्तिकं समीचीनमिति। भास्कराचार्याणां समये लङ्का नगरी-भारतवर्षे-एवासीदिदमपि सूचितम् भवति। आदित्यस्य प्रथमोदयः आदित्यस्यैव वारे सृष्ट्यारम्भे आसीदित्यत्रागम एव प्रमाणम्। तत्र मेषार्कयुक्तस्य चान्द्रमासस्य सौरमासस्य च चैत्रत्वमुक्तम्। दर्शान्ते चन्द्रार्कयोर्योगो भवति ततश्चैत्रादि सितादिरेव भवतीति

युक्तियुक्तमाचार्यकथनम् तत एव दिनमासवर्षयुगादिकानां सर्वेषामेककालावच्छेदेन प्रवृत्तिरासीदिति स्फुटम् ।

शिक्षा—प्राचीन समय से ही लङ्का नगरी का भी—जो रावण राजधानी के नाम से प्रसिद्ध थी–उल्लेख भारतवर्ष में ही था। नाड़ी वृत्त के धरातल में लङ्का से ९०° की दूरी पर लङ्का के उदय क्षितिज में यमकोटि नाम की नगरी है तथा लङ्का से ९०° की दूरी पर लङ्का के पश्चिम क्षितिज में रोमक पत्तन नाम की नगरी थी ऐसा भास्कराचार्य के कथन से ज्ञात होता है तथा लङ्का से नीचे–लङ्का से १८०° पूर्व अथवा पश्चिम इसी नाडी वृत्त में सिद्धपुर नाम का कोई नगर था। अतः यमकोटि के शिर पर जिस समय सूर्यबिम्ब होगा उस समय वहां मध्याह्न होगा और लङ्का में सूर्योदय होगा रोमकपत्तन में अस्त होगा तथा सिद्धपुर में अर्द्धरात्रि होगी—यह सब नगर नाड़ी वृत्त (Equater) के धरातल में होने के कारण यहां ६ घण्टे का दिनार्ध और ६ घण्टे की अर्द्ध रात्रि ही सदा होती रहेगी।

अमावास्यान्त में सूर्य और चन्द्रमा एक ही दृक्सूत्र में रहते हैं। चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा अधिक गतिशील होने से—सूर्य से जब आगे क्रान्तिवृत्त में बढ़ता है तो १२° की दूरी का अन्तर होने से प्रतिपदादि तिथियां होती हैं। चैत्रादि चान्द्र और मेषार्क की एक ही समय में प्रवृत्ति हुई थी—अतः प्रथम सृष्ट्यारम्भ मास को चैत्रादि शुक्लपक्षारम्भ से ही कहा जावेगा। सब जगत् के घटपटादि पदार्थों का प्रकाशक सूर्य ही है, सात ग्रहों में, सर्वोच्च स्थिति वाला और प्रकाशमय होने के कारण सृष्ट्यारम्भ का प्रथम दिन रविवार ही कहना चाहिए। इसलिये दिनमास वर्ष सभी कालों का प्रवृत्तिकाल इसी समय को कहा गया है। सूर्य सिद्धांत के "लङ्कायामार्धरात्रिकः" इस कथन के साथ आचार्य का मतभेद है क्योंकि सूर्य सिद्धान्त के मत से सृष्ट्यारम्भ तब हुआ था जब लङ्का में अर्धरात्रि थी अर्थात् सौर सिद्धान्त के ६ घण्टे बाद ही भास्कराचार्य सृष्ट्यारम्भ काल मानते हैं।

इदानीं कालमानानां विभागकल्पनां श्लोकत्रयेणाह—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता ॥१६॥
त्रिंशत्कलाऽऽक्षी घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तैः खगुणैर्दिनञ्च।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः ॥१७॥
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः ॥१८॥

योऽक्ष्णोर्लोचनयोः पक्ष्मपातः स निमेषः। स यावता कालेन निष्पद्यते तावान् कालोऽपि निमेषशब्देनोच्यते, उपचारात्। तस्य त्रिंशद्विभागस्तत्परसंज्ञः। तत्परस्य शतांशस्त्रुटिरिति। अथ च निमेषैरष्टादशभिः काष्ठा। क्वचिच्छास्त्रान्तरे तिथिभिरिति पाठः। काष्ठात्रिंशता कलोक्ता। कलानां त्रिंशता घटिका। सा

चाऽर्स्त्री। भभ्रमस्य षष्टिभाग इत्यर्थः। घटिकाद्वयेन क्षणो मुहूर्त्तः। क्षणानां त्रिंशता दिनम्। अथ प्रकारान्तरेण दिनमुच्यते। गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुरिति— एकमात्रो लघुः। द्विमात्रो गुरुः। तथा—"सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः।" इति छन्दोलक्षणे प्रतिपादितम्। यदक्षरं सानुस्वारं विसर्गान्तं दीर्घं यस्याक्षरस्य परतः संयोगस्थलघ्वपि गुरुसंज्ञं ज्ञेयम्। गुर्वक्षरस्योच्चार्यमाणस्य यावान् कालस्तद्दशकेनैकोऽसुः प्राणः। प्रशस्तेन्द्रियपुरुषस्य श्वासोच्छ्वासान्तर्वर्ती काल इत्यर्थः। षड्भिः प्राणैरेकं पानीयपलम्। पलानां षष्ट्या घटी। घटीनां षष्ट्या दिनम्। त्रिंशद्दिनैरेको मासः। मासैर्द्वादशभिर्वर्षमिति कालस्य विभागो दर्शितः। अथैतत्प्रसङ्गेन क्षेत्रविभागोऽपि कथितः। क्षेत्रे समाद्येन समा विभागा इति क्षेत्रे कक्षायां समाद्येन वर्षाद्येन समास्तुल्याः क्षेत्रविभागा ज्ञेयाः। ते के? चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः। यथैकस्य वर्षस्य मासदिनादयो विभागा एवं भगणस्य राश्यंशादयः।

दीपिका—स्वस्थपुरुषस्य नेत्रपक्ष्मपातकालेन तथा दशगुर्वक्षरोच्चारण कालेन निमेषः वा असुरिति प्रमाणम्।

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$ = तत्पर, $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$ = त्रुटि। १८ निमेष = १ काष्ठा। ३० काष्ठा = १ कला। ३० कला = १ नाक्षत्रीय घटिका। २ घटी = १ क्षण: (मुहूर्त्तः)। ३० क्षण = १ दिनम् अथवा ६ असु = १ पलम्। ६० पल = १ घटिका। ६० घटिका = १ दिनम्। २१६०० असु = १ दिनम्। ४५ निमेषेणैकासुरित्यर्थः।

६० सेकेण्ड = १ मिनिट। ६० मिनिट = १ घंटा। २४ घण्टा = १ दिनम्। अहर्निशैक्यम् ६० घटिकात्मकम्। तत्र द्वादशराशीनामुदयोऽपि समीचीनः। अतस्तत्रैकराशि-उदय मानं स्वल्पान्तरात् ५ घटिकात्मकं स्यादेवार्थात् $\frac{५}{२}$ घटिका = २ घण्टा—राशेरर्द्धंहोरा स्यादतएव ६० घटिकात्मकं नाक्षत्रमानं २४ घण्टा इत्यनेन तुल्यमिति। अतः २४ होरात्मकेन कालेनैक महोरात्रं भवति इति नव्यकल्पनामूलमपिसिद्धम्। 24 Hours=1 day।

६०×६०×६=२१६०० एतन्मितासुभिरथवा ६०×२४×६०=८६४०० एतन्मित सेकेण्ड मानेनचाहोरात्रं प्रसिद्धम्। $\frac{८६४००}{२१६००}$ = ४ से. = १ असुरिति। अतः १ मिनिटात्मके काले $\left(\frac{\text{१ असु} \times \text{६० सेकण्ड}}{\text{४ सेकन्ड}} = \text{१५ असु}\right)$ स्वस्थ पुरुषस्य पञ्चदश संख्याकाः श्वासाश्चलन्तीति सूचितम्।

शिखा—त्रुटि आदि काल परिभाषाएँ दीपिका में स्पष्ट की गई हैं। आधुनिक घण्टा मिनिट सेकेण्ड की जो काल कल्पना है इससे १ मिनिट जो १५ असु के तुल्य उक्त गणित में स्पष्ट किया गया है इससे यह प्रतीति हो रहा है कि स्वस्थ पुरुष के १ मिनिट में १५ बार श्वास चलती है।

इदानीमनयैव कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानान्याह :—

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव।
रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम् ॥१९॥
इनोदयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम्।
तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रमः ॥२०॥

रविर्यावता कालेन पूर्वगत्या मेषादिभचक्रं भ्रमति, तावत्प्रमाणं रविवर्षं प्रदिष्टम्। तस्य द्वादशभागो रविमासः। मासस्य त्रिंशदंशोऽर्कदिनम्। दिनषष्ट्यंशोऽर्कघटिका। तत्षष्ट्यंशोऽर्कविघटिकेति पूर्वपरिभाषया सर्वत्र वेदितव्यम्। इत्यर्कमानम्।

अथ दैवमानम्—द्युरात्रं च देवासुराणां तदेवेति। यदर्कवर्षं तदेव देवानां दैत्यानाञ्च द्युरात्रमहोरात्रः। एक एव तेषामहोरात्रः। किन्तु यद्देवानां दिनं सा दैत्यानां रजनी। तथा च गोले वक्ष्यति। अस्मादहोरात्रान्मासवर्षादिकल्पना तथैव परिभाषया। एवं देवानां वर्षं रविवर्षशतत्रयेण षष्ट्यधिकेन भवति।

अथ चान्द्रमानम् :—रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास इति। रवीन्द्वोर्युतिरमावास्यान्ते भवति। तस्या युतेरन्ययुतिपर्य्यन्तं यावान् कालस्तावान् विधुमासः। एवं योऽत्रामावास्यान्तो मासः स विधुमास इत्युक्तं भवति। तस्मान्मासात् पूर्वपरिभाषया वर्षादिकल्पना। इति चान्द्रमानम्।

अथ पैत्रम् ।—एतच्च पैत्रं द्युरात्रमिति। यो विधुमासः स एव पितृणामहोरात्रः। अतः पूर्ववन्मासवर्षादिकल्पना।

अथ सावनम् :—इनोदयद्वयान्तरमिति। अर्कोदययोरन्तरं यत् तदर्कसावनं दिनम्। तदेव कुदिनसंज्ञं ज्ञेयम्। अतोऽपि पूर्ववन्मा सवर्षादिकल्पना। अत्रार्कग्रहणमुपलक्षणं, तेनान्येषामपि ग्रहाणां तदुदयादुदयान्तरं तत्सावनमिति।

दीपिका—संक्रान्त्या सौरः मासो भवति। एकराशिं हित्वा यावता कालेन रविः राश्यन्तरं याति सः सौरः मासस्तत्त्रिंशद्भागः सौरं दिनं भवतीति। द्वादशभिर्मासैः सौरवर्षं भवत्यर्थात्—यावता कालेन रविः क्रान्तिवृत्तगत्या चक्रं भुनक्ति तदेव सौरवर्षमिति स्फुटं सौरमानम्। तदेव देवासुराणां द्युरात्रमिति दैवमानम्। इदं सर्वं सायनमेव ग्राह्यम्। सौरवर्षमिदं निरयणं सायनञ्च द्विविधं भवतीत्यपि वक्तुं शक्यते। देवासुराणां सौम्ययाम्यध्रुवाधः स्थितत्वात् गोलयुक्त्या यदा देवानां दिनं तदा दैत्यानां रजनी, यदा देवानां रजनी तदा दैत्यानां दिनमिति द्युरात्रञ्च देवासुराणां तदेवेत्युपपन्नम्।

दर्शान्ते रविचन्द्रयोरन्तराभावः। चन्द्रस्य शीघ्रगतित्वात् पुनश्च यदाऽसौ प्रथमदर्शान्तबिन्दुमायाति तदा तस्यैको भगणः पूर्यते। रविस्तु तावता स्व गत्या अग्रे गतो भवति। पुनश्चन्द्रो यदा रविणा सह मिलति तदाऽन्यो दर्शान्तो भवति। प्रथमदर्शान्ताद्द्वितीयदर्शान्तावधि यः कालस्तस्य चान्द्रमास इति प्रसिद्धं नाम ज्ञेयम्।

पितरश्चन्द्रपृष्ठे निवसन्ति। कृष्णपक्षे सप्तम्यर्धे तत्रास्तस्तस्यादित्यनेनैव चान्द्रमासमानं पितृणामहोरात्रं भवति। इत्युपपन्नम्। वस्तुतस्तु गोल दर्शनेन तत्रास्ति विशेषः स च गोलाध्याये स्वयमाचार्येणोक्त अन्यैरपि।

शिखा— जब रवि मेषादि से वृषादि द्वादश राशियों का पृथक् पृथक् भोग करता है तब १२ संक्रान्तियां होती हैं। एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौर मास होता है। अतः १२ सौर मास का एक सौर वर्ष हुआ। जब हमारे मान से एक सौर वर्ष होगा उतने समय में उत्तर ध्रुव में ६ महीने का दिन और दक्षिण ध्रुव में ६ महीने की रात्रि एवं हमारे १ सौर वर्ष में—देवासुरों के एक सौर दिन के तुल्य दिन होगा इसे दिव्य दिन कहेंगे—इसी प्रकार दिव्यमास और दिव्य वर्ष भी समझना चाहिए।

वास्तव में यह सब सायन मान लेना चाहिए। भास्कराचार्य ने यह सब निरयण मान से कहा है, अतः यह सौर वर्ष कुछ स्थूल कहा जा सकता है। आकाश में जिस समय सूर्य चन्द्रमा एक दृष्टि सूत्र में आते हैं उस समय अमावास्या होती है। फिर एक अमावास्या के बाद जितने समय में दूसरी अमावास्या होगी उतने समय में एक चान्द्र मास होता है। यह चान्द्र मान हुआ। चन्द्रमा के पृष्ठ में पितर लोक हैं। चन्द्र पृष्ठ के अभिप्राय से जिस समय सूर्य का चन्द्रमा के पृष्ठ क्षितिज में उदय होगा उस समय चन्द्र लोक में हमारे अभिप्राय से कृष्ण पक्ष की साढ़ेसप्तमी होगी, और अमावास्या के दिन चन्द्र लोक में मध्याह्न होगा एवं शुक्लपक्ष की साढ़े सप्तमी को चन्द्र लोक के ऊर्ध्व पृष्ठ में सूर्यास्त होगा—इस प्रकार जब हमारी १५ तिथियाँ होंगी उस समय तक वहाँ दिन और शेष १५ तिथियों तक चन्द्र पृष्ठ में रात्रि रहेगी। पितृ लोक अर्थात् चन्द्र लोक में एक चान्द्रमास के तुल्य १ दिन होगा इसे पितृ मान कहना चाहिए। खगोल के सूक्ष्म ज्ञान से गणित करने पर भी भास्कराचार्य के उक्त मत में कुछ स्थूलता आती है। चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति साधन के समय इस पर विशद विचार किया जावेगा।

एक नक्षत्र के उदय के बाद पुनः जितने समय में वह नक्षत्र पुनः क्षितिज में आयेगा (६० घटी = २४ घण्टा में) उतने समय का नाम नाक्षत्र दिन या नाक्षत्र सावन दिन कहा जाता है।

अथ नाक्षत्रमानम्।—भवासरस्तु भभ्रम इति। भभ्रमो नक्षत्रसावनमित्यर्थः।

इदानीं ब्राह्ममानमाह।—

> खखाऽभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
> क्रमेण सूर्य्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ॥२१॥
> स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसम्मितैः।
> युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः ॥२२॥
> मनुः क्षमानगैर्युगैर्युगेन्दुभिश्च तैर्भवेत्।
> दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका ॥२३॥

सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद् युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रं तु कल्पद्वयम् ॥२४॥
शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्मयत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान् ॥२५॥

खखाऽभ्रदन्तसागरैरिति :—रविवर्षाणां लक्षचतुष्टयेन द्वात्रिंशत्सहस्राधिकेन चतुर्गुणेन कृतं नाम प्रथमो युगचरणः १७२८०००। त्रिगुणेन त्रेतासंज्ञो द्वितीयो युगचरणः १२९६०००। द्विगुणेन द्वापराख्यस्तृतीयः ८६४०००। एकगुणेन कलिश्चतुर्थः ४३२०००। किंविशिष्टा एते युगचरणाः? "स्वसन्ध्यकान्तदंशकै-र्निजार्कभागसम्मितैर्युताश्च"। युगचरणप्रमाणस्य यो द्वादशांशस्तत्प्रमाणा, तस्य चरणस्य सन्ध्या। सा चरणादौ भवति। तावांश्च सन्ध्यांशः। स चरणस्यान्ते। एवं स्वसन्ध्यासन्ध्यांशैः सह एते युगचरणाः कथिता इत्यर्थः। कृतादौ सन्ध्या-वर्षाणि १४४०००। कृतान्ते सन्ध्यांशः १४४०००। त्रेतादौ सन्ध्या १०८०००। त्रेतान्ते सन्ध्यांशः १०८०००। द्वापरादौ सन्ध्या ७२०००। द्वापरान्ते सन्ध्यांशः। ७२०००। कल्यादौ सन्ध्या ३६०००। कल्यन्ते सन्ध्यांश ३६०००। तद्युतौ युगमिति।—तेषां चतुर्णां चरणप्रमाणानां युतौ युगप्रमाणम्। तच्च रदाब्धयोऽयुताहताः ४३२००००। मनुः क्षमानगैर्युगैरिति।—तैर्युगैरेकसप्तत्यामितैरेको मनुः। तैर्मनुभिर्युगेन्दुभिश्चतुर्दशभिर्दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका। ब्रह्मणो दिनतुल्या रात्रिश्च भवति। प्रमाणिकाशब्देन छन्दोऽपि सूचितम्। अहो एकसप्ततियुगो मनुरुक्तः। ब्रह्मदिने चतुर्दश मनवः। एकसप्ततिर्यावच्चतुर्दशभि-र्गुण्यते तावत् षडूनं सहस्रं भवति। स्मृतिपुराणादौ तु—"चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते।" तत् कथमिदमुच्यते? इत्याशङ्कां परिहरन् आह।—"सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु" इति।—आदिश्च मध्यानि चावसानञ्च आदिमध्यावसानानि। एवं तानि पञ्चदश। तेष्वादिमध्यावसानेषु मनूनां सन्धयः स्युः। ते चकृताब्दसमकालाः। कृताब्दा यावत् पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते तावद्युगषट्-काब्दतुल्या भवन्ति। अतस्तैर्मिश्रितैर्युगसहस्रं ब्रह्मणो दिनमुच्यते। तत् कथमि-दमुच्यत इत्यनुपपन्नमित्युपपद्यते। यद् ब्रह्मदिनं सोऽपि कल्पसंज्ञः। एवं "निशा च तत्प्रमाणिका" इति। द्युरात्रं तु कल्पद्वयमिति। अस्माद्दिनात् यत् पूर्वपरिभाषया वर्षशतं तद् ब्रह्मण आयुः। यत् तस्यायुः स महाकल्प इत्युच्यते। ततोऽन्यो ब्रह्मा तदन्तेऽन्य इति पुराणादौ कथ्यते श्रूयते च। विष्णुपुराणे।—

> **"निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।**
> **तत् पराख्यं तदर्धन्तु परार्धमभिधीयते ॥"**

तत् कियन्तस्ते गता इत्याशङ्कायामाह,—"यतोऽनादिमान्" इत्यादि। यतः कालोऽनादिमान्, अतो ये गतास्तान् न वेद्मि।

दीपिका—कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपाद व्यवस्थयेति सौरोक्त मूलमत्रापि चिन्त्यम्।

शिखा—४३२०००० सौर वर्षों की संख्या में एक महायुग (कलियुग+द्वापर+त्रेता+सत्ययुग) होता है। प्रायः प्रत्येक युगान्त में प्रलय की स्थिति आती है, और महायुग में प्रलय विशेष की सम्भावना तथा एक हजार महायुग के सौर वर्ष ४३२००००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों में महाप्रलय होकर पुनः इतने ही समय की रात्रि मिलाकर कुल ८ अरब ६० करोड़ मानववर्षों का ब्रह्मा का अहोरात्र होता है। ४+३+२+१=धर्म चरण १० के योग में जब महायुगमान ४३२०००० है तो जहाँ ४,३, २, १ चरण पृथक् पृथक् धर्म है वहाँ की युग सौर वर्ष संख्या क्या होगी? इस अनुपात से

$\frac{४३२००००\times ४}{१०}$ = १७२८००० = सत्ययुग के सौर वर्ष का प्रमाण,

$\frac{४३००००\times ३}{१०}$ = १२९६००० = द्वापर के सौर वर्ष का प्रमाण

×२ ८६४००० = त्रेता ,, ,, ,,

×१ = ४३२००० = कलियुगमान ,, ,,

आज कल के भूगर्भ शास्त्रियों (Geology) ने भी पृथ्वी की आयु केप्रायः इतने ही वर्षों की संख्या गणित से आँकी है। यह ब्राह्म मान है। "युगानां सप्ततिः सैकामन्वन्तर मिहोच्यते" सूर्य सिद्धान्त के इस आगम प्रमाण से७१महायुग=१ मन्वन्तर के होता है। १ ब्रह्म दिन में १४ मनु होते हैं। अतः १४×७१=९९४ महायुग का एक स्थूल ब्रह्म दिन हुआ। प्रत्येक मनु के आदि और अन्त में सन्धि काल=१७२८००० वर्ष के तुल्य होता है। जैसे रात्रि के अन्त और दिन के प्रारम्भ में उदय क्षितिज के नीचे दृग्मण्डल में सूर्य का क्षितिज से नीचे नतांश १८° होने पर शरीर में रोम दिखाई देने लगते हैं इस समय से ३ घटी (१ घण्टा १२ मि.) सन्ध्याकाल होता है इसी प्रकार सायं काल दिन के अन्त और रात्रि के प्रारम्भ में ३ घटी सन्ध्याकाल समझना चाहिए। ठीक इसी प्रकार एक मनु के अन्त और दूसरे मनु के आदि में भी सन्ध्या काल (सत्ययुग के वर्ष १७२८००० के तुल्य) होता है। इस प्रकार १४ मनु के सन्ध्याकाल की गणना कर, तथा १४ वें मनु के अन्त और दूसरे कल्प के प्रथम मनु के प्रारम्भ में भी एक सन्ध्या होगी एवं कुल १४+१=१५ सन्ध्याएं हुई। अतः एक सन्ध्या काल जो एक सत्ययुग के तुल्य है उसे १५ सन्ध्या से गुणा करने पर १५×सत्ययुग वर्ष=$\frac{४ \text{ युग}\times १५}{१०}$ = ६ युग ६ महायुग यह एक कल्प की या १ ब्रह्म दिन की सन्ध्या हुई। एवं ९९४+६= १००० महायुग=१ कल्प के हुआ। अतः 'चतुर्युग सहस्रेण ब्रह्मणो दिन मुच्यते' यह उपपन्न हुआ। इस १००० एक हजार महायुग अर्थात् ४३२००००×१०००=४३२००००००० सौर वर्ष (४ अरब ३२ करोड़) का एक ब्रह्म दिन हुआ।

४३२०००००००×२=८६४०००००००सौर वर्षोंका १ ब्रह्माका अहोरात्र हुआ।

८६४०००००००×३० =२५९२००००००००,, १ ,, १ मास ,,

२५९२००००००००×१२=३११०४००००००००० ,, ,, १ वर्ष ,,

इस प्रकार के (१००) एक सौ वर्ष होने पर ब्रह्मा की पूर्णायु होती है क्योंकि ब्रह्मा-शतायु

होता है। एक सौर वर्ष में ३६० सौर दिन होते हैं—अतः
३११०४०००००००० × १०० = ३११०४०००००००००० सौर वर्ष को ३६० से गुणा करने पर उपलब्ध १११९७४४०००००००००००० संख्या १८ अंकों की हो रही है। प्रत्येक दाहिना अंक बाएँ से १० दश गुणित है। १० गुणित वामवृद्धि है। इसी अभिप्राय से वंश परम्परा की वृद्धि करनेवाली सुजात गुण वर्ग की धर्म पत्नी को 'वामा दशगुणोत्तरा' भी कहा गया है। तथा एक दश शत सहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयःक्रमशोऽर्बुदखर्वनिखर्वमहापद्म-शंखवः इत्यादि तक में ही या इसके आगे भी दश गुणितोत्तर इस महाङ्कार्णव द्वारा ही समग्र विश्व अनन्त ब्रह्माण्ड का भी अनुमान किया जा सकता है। १ ब्रह्म कल्प में सृष्टि का लय हो जाता है अतएव ब्रह्मा के जितने वर्ष बीत गये हों उनसे प्रयोजन नहीं है वर्त्तमान ब्रह्मा के दिन में ही ग्रहचार की चर्चा करनी चाहिए।

इदानीमन्यदाह।—

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः॥२६॥

तथा वर्त्तमानस्य ब्रह्मण आयुःकालस्य किं गतमिति न वेद्मि। तत्र केचिदाचार्य्या आयुषोऽर्द्धं गतं केचित् सार्द्धवर्षाष्टकं गतमित्यूचुः। तत्रागमः प्रमाणम्। इहागमद्वैविध्ये कः प्रमाणमित्यत्रास्माकं नाग्रहः। यतोऽस्य गतैर्वर्षैर्मासैर्दिनैरपि प्रयोजनाभावः। ग्रहास्तु वर्त्तमानस्य दिवसस्य गतात् साध्याः।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—पूर्वश्लोक की टीका में ही सुस्पष्ट है।

इदानीं तत्कारणमाह।—

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्व्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु॥२७॥

यत एषां ग्रहाणां दिनादौ सृष्टिर्दिनान्ते लयः। यदि महाकल्पगताद्ग्रहाः साध्यन्ते तर्हि यावन्त्योऽस्य विभावर्य्यो गतास्तासु ग्रहाभाव एव। अतो विद्यमानेष्वेव ग्रहेषु तच्चारचिन्ता कर्त्तुं युज्यते। यत्तु कैश्चिदविद्यमानेष्वपि तेषु महाकल्पगताद्वर्त्तमानाः कृतास्तान् प्रति वक्रोक्त्या सोपहासमाह,—"तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु" इति।

दीपिका—ब्रह्मदिनादौ सृष्ट्यारम्भो भवति—दिनान्ते सृष्टेर्लय इति सर्वमुक्तमत एव ब्रह्मण इदानीं कियन्मितमायुर्गतमित्यस्य गणिते प्रयोजनाभावात्तस्य चर्चापि प्रयोजनशून्येत्याचार्यभावः। वस्तुतस्तु संकल्पादौ ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे-इत्यादिना आयुषोऽर्धं गतमित्यागममतन्तु स्वीकरणीयमेवेति मे मतम्।

इदानीं वर्तमानदिनगतमाह ।—

यातः षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद् युगाङ्घ्रित्रयम्
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः ।
गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्राः १९७२९४७१७९ शकाब्दान्विताः
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्तमाने गताः ॥२८॥

स्वायम्भुवो मनुरभूत् प्रथमस्ततोऽमी
स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्याः ।
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्याम्
वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम् ॥२९॥

श्लोकद्वयं स्पष्टार्थम् । इति ब्राह्ममानम् ।

दीपिका—कल्पादितः शकादिं यावत् कियन्तः सौराब्दा गता इति संकल्ल्य्य १९७२९४७१७९ एतन्मितमायान्तीत्याचार्येण ते पठिताः ।

शिखा—शक नृप के अन्त तक कितने सौर वर्ष बीत गये इसका संकलन भास्कराचार्य ने किया है । वर्त्तमान ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में चतुर्दश मनु में ६ मनु बीत गये, सम्प्रति यह सातवां वैवस्वतमनु प्रचलित है ।

∴ ७१ × ६ महायुग = ४२६ महायुग ।

४२६ महायुग × ४३२००००	=	१८४०३२००००	सौर वर्ष
६ मनु की सन्ध्या	=	१२०९६०००	,,
२७ महायुग	=	११६६४००००	,,
१ कृतयुग चरण	=	१७२८०००	,,
१ त्रेता………	=	१२९६०००	,,
१ द्वापर………	=	८६४०००	,,
कलिगताब्द	=	३१७९	,,
योग	=	१९७२९४७१७९	
		१९७२९४७१७९	सौर वर्ष

इदानीं बार्हस्पत्यं मानुषमानं चाह ।—

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्ति ।
ज्ञेयं विमिश्रं तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः ॥३०॥

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरात्
मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् ।

यत् कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यम्
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात् ॥३१॥

पूर्वश्लोके पूर्वार्द्धं सुगमम्। मनुष्यमानं तु विमिश्रं ज्ञेयम्। कुतः? यतो लोके चतुर्भिरेव मानैर्व्यवहारः प्रवर्त्तते। वर्षायनर्तुयुगादिकं सौरमानात् प्रवर्त्तते लोके। मासास्तिथयश्च चन्द्रात्। व्रतोपवासचिकित्सितसूतकवासराद्यकं सावनात्। घटिकादिकं नाक्षत्रादेव। एवं सौरचान्द्रसावननाक्षत्रमानैश्चतुर्भिरेभिर्मिश्रितैर्मनुष्यमानम्।

दीपिका—बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात्संवत्सरं सांहितिका वदन्ति—इति कल्पकुदिने कल्पगुरुभगणा लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमित्यनुपातेनैकदिनसम्बन्धि यो मध्यमो ग्रहो भवति तत्तुल्यमेव तस्य मध्यमागतिर्भवितुमर्हति। तया गत्या एकराशिं यावता कालेन गुरुर्गच्छति स एव कालो गुरोर्मध्यमभोगकाल उच्यते। ततो द्वितीयराशिप्रवेशस्य यः समयस्तत्रैव द्वितीयसम्वत्सरस्यापि प्रवेशकाल इत्याचार्यः संहितामतमुपपादयति—इति दिक्।

सावनदिनोपपत्तिस्तु भभ्रमास्तु भगणैरित्यादिना-अग्रे भविष्यति सुस्पष्टेति।

शिखा—बृहस्पति एक राशि का भोग कर जब दूसरी राशि में प्रवेश करता है तो उसी समय विजयादि षष्टि सम्वत्सरों में गणितागत जो संवत्सर हो उसका प्रवेश होता है। बृहस्पति की मध्यमागति ५ कला के बराबर है। अतः १ राशि के ३० अंशों को ६० से गुणा करने पर १८०० कलाएँ होती हैं इनमें ५ का भाग देने पर ३६० सौर दिनों में प्रायः बृहस्पति एक राशि का भोग पूरा करता है मध्यम मान से इसी समय नये संवत्सर का प्रवेश होना चाहिए। भास्कराचार्य यहां संहिता शास्त्रज्ञों के मत को लिख रहे हैं। स्पष्ट-गति से राशि भोगकाल भिन्न-भिन्न होगा—उसे सांहितिकों ने सम्वत्सर प्रवेश नहीं माना है। इसी प्रसंग से आचार्य ने सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र मानों में जिस का जहाँ पर व्यवहार करना चाहिए उसका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया है आचार्य के इस कथन से धर्मशास्त्र के काल निर्णय में "कस्मिन् कर्मणि को मासो ग्राह्यः" शंका का समूल निराकरण हो जाता है। वर्ष अयन ऋतु—आदि सब सौरमान से मानने चाहिए। मास और तिथि को चान्द्रमान से मानना चाहिए। व्रतोपवास संस्कारादि कर्म सावन मान से, और घटकादि नाक्षत्र मान से माननी चाहिए।

इदानीं मानोपसंहारश्लोकमाह।—

एवं पृथङ्मानव-दैव-जैव-पैत्रार्क्ष-सौरैन्दव-सावनानि।
ब्राह्मं च काले नवमं प्रमाणं ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात् ॥३२॥

एवं कालस्य नव मानानि। तत्र ग्रहानयनं मनुष्यमानात्। यतस्ते मनुष्यैः साध्याः।

दीपिका—एवम् (१) मानव (२) दैव (३) जैव (४) पैत्र (५) नाक्षत्र (६) सौर (७) चान्द्र (८) सावन (९) ब्राह्म—इति नवभिर्मानैः महाकल्पावच्छिन्नः कालराशिः पृथक्-पृथक् माप्य इति।

शिखा—ये उक्त पृथक्-पृथक् नौ मान कहे गये हैं। जैसे एक बहुत बड़ी धान्य राशि को अलग-अलग बटखरों से प्रस्थ-आढ़क द्रोण या मन सेर छटाँक आदि से माप कर नियत फल जाना जा सकता है इसी प्रकार इस महाकल्प राशि को स्थान विशेष पर उक्त नौ मानों से जिसकी जहां पर जैसी आवश्यकता हो—तदनुसार मापना चाहिए। किन्तु ग्रहों का साधन तो मानव मान से ही करना चाहिए—यही सरल विधि है।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणौ कालमानाध्यायः।

इति श्रीकेदारदत्तीयदीपिका-शिखा-टीकाद्वयोपेतकालमानाध्यायः समाप्तः ॥१॥

अथेदानीं ग्रहाणां मन्दोच्चानां चलोच्चानां ग्रहपातानाञ्च भगणान् श्लोक-षट्केनाह।—

अर्कशुक्रबुधपर्यया विधेरह्नि
कोटिगुणिता रदाब्धयः ४३२०००००००।
एत एव शनिजीवभूभुवाम्
कीर्त्तिताश्च गणकैश्चलोच्चजाः ॥१॥

खाभ्रखाभ्रगगनामरेन्द्रिय-
क्ष्माधराद्रिविषया ५७७५३३००००० हिमद्युतेः।
युग्मयुग्मशरनागलोचनव्याल
षड्नवयमाऽश्विनो २२९६८२८५२२ऽसृजः ॥२॥

सिन्धुसिन्धुरनवाष्टगोऽङ्कषट्-
त्र्यङ्कसप्तशशिनो १७९३६९९८९८४ ज्ञशीघ्रजाः।
पञ्चपञ्चयुगषट्कलोचन-
द्व्यब्धिषड्गुणमिता ३६४२२६४५५ गुरोर्मताः ॥३॥

द्विनन्दवेदाङ्कगजाग्निलोचन-
द्विशून्यशैलाः ७०२२३८९४९२ सितशीघ्रपर्य्ययाः।
भुजङ्गनन्दद्विनगाङ्गबाणषट्-
कृतेन्दवः १४६५६७२९८ सूर्य्यसुतस्य पर्य्ययाः ॥४॥

खाष्टाब्धयो ४८० ऽष्टाक्षगजेषुदिग्द्विप-
द्विपाब्धयो ४८८१०५८५८ द्व्यङ्कयमा २९२ रदाग्नयः ३३२।
शरेष्विभा ८५५ स्त्र्यक्षरसाः ६५३ कुसागराः ४१
स्युः पूर्व्वगत्या तरणेर्मृदूच्चजाः ॥५॥

गजाष्टिभर्गत्रिरदाश्विनः २३२३११६८ कुभू-
द्रसाश्विनः २६७ कुद्विशराः ५२१ क्रमर्त्तवः ६३।
त्रिनन्दनागा ८९३ युगकुञ्जरेषवो ५८४
निशाकराद् व्यस्तगपातपर्य्ययाः ॥६॥

ग्रहाणां पूर्व्वगत्या गच्छतां कल्प एतावन्तो भगणा भवन्ति। तथा मन्दोच्चानां चलोच्चानाञ्च प्राग्गत्या एतावन्तः पर्य्यया भवन्ति। तथा पातानां पश्चिमगत्या एतावन्तो भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः।—सा तु तत्तद्भाषाकुशलेन तत्तत्क्षेत्रसंस्थानज्ञेन श्रुतगोलेनैव श्रोतुं शक्यते, नान्येन। ग्रहमन्दशीघ्रोच्चपाताः स्वस्वमार्गेषु गच्छन्त एतावतः पर्य्ययान् कल्पे कुर्व्वन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम्। स चागमो महता कालेन लेखकाध्यापकाध्येतृदोषैर्बहुधा जातः; तदा कतमस्य प्रामाण्यम? अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्। उपपत्त्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः। तदपि न। यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते। न तया तेषां भगणानामियत्ता कर्त्तुं शक्यते; पुरुषायुषोऽल्पत्वात्। उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः, भगणान्तं यावत्। एवं शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्य्यते। मन्दोच्चानान्तु वर्षशतैरनेकैः। अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति अत एवातिप्राज्ञा गणकाः साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढगणकस्वीकृतं कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथाऽन्यैर्भ्रान्तिज्ञानेनान्यथोदितानर्थांश्च निराकर्त्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति। ग्रहगणित इतिकर्त्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनीयं भवत्वागमो योऽपि कोऽप्ययमाशयस्तेषाम्। यथाऽत्र ग्रन्थे ब्रह्मगुप्तस्वीकृतागमोऽङ्गीकृत इति। तर्हि तिष्ठतु तावदु पपत्त्या भगणानामियत्तासाधनम्? अथ यद्युपपत्तिरुच्यते तर्हि इतरेतराश्रयदोषशङ्कया वक्तुम् अशक्या। तथापिसङ्क्षिप्तामुपपत्तिं वक्ष्यामः। इतरेतराश्रयदोषोऽत्र दोषाभासः। उपपत्तिभेदानां योगपद्येन वक्तुम् अशक्यत्वात्।

अथोच्यते।—अर्कशुक्रबुधपर्य्यया विवेरित्यादि। यावन्ति कल्पे वर्षाणि तावन्त एव सूर्य्यभगणा इत्युपपन्नम्। यतो भगणभोगकालो हि वर्षमुक्तम्। बुधशुक्रौ तु रवेरासन्नावेव कदाचिदग्रतः कदाचित् पृष्ठतस्तस्यानुचराविव सदा व्रजन्तौ दृश्येते। अतस्तयोरपि रविभगणा तुल्या भगणा इत्युपपन्नम्। चलोच्चभगणोपपत्तिमग्रे वक्ष्यामः।

अथ समायां भूमावभीष्टकर्कटकेन त्रिज्यामिताङ्कैरङ्कितेन वृत्तं दिगङ्कितं भगणांशैश्चाङ्कितं कृत्वा तत्र प्राचीचिन्हाद्दक्षिणतो नातिदूरे प्रदेश उत्तरेऽयने वृत्तमध्यस्थितेन कीलेन रवेरुदयो वेध्यः। ततोऽनन्तरं वर्षमेकं रव्युदया गणनीयाः—ते च पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रय ३६५ तुल्या भवन्ति। तत्रान्तिमोदयः पूर्व्वोदयस्थानादासन्नो दक्षिणत एव भवति। तयोरन्तरं विगणय्य ग्राह्यम्। ततोऽन्यस्मिन्

तदप्युत्तरमन्तरं दिने पुनरुदयो वेध्यः। स तु पूर्वचिन्हादुत्तरत एव भवति। यद्यन्तरद्वितयकलाभिरेकीकृताभिः षष्टिः ६० घटिका ग्राह्यम्। ततोऽनुपातः। यद्यन्तरद्वितयकलाभिरेकीकृताभिः षष्टिः ६० घटिका लभ्यन्ते तदा दक्षिणोनान्तरेण किम्? इति। अत्र लभ्यन्ते पञ्चदश घटिकाः, त्रिंशत पलानि, सार्द्धानि, द्वाविंशतिर्विपलानि १५। ३०। २२। ३०। आभिर्घटीभिः सहितानि पञ्चषष्ट्याधिकशतत्रयतुल्यानि सावनदिनान्येकस्मिन् रव्यब्दे भवन्ति ३६५। १५। ३०। २२। ३०। ततोऽनुपातः। यद्येकेन वर्षेणैतावन्ति कुदिनानि, तदा कल्पवर्षैः किम्? इति। एवं ये लभ्यन्ते, ते सावनदिवसा भवन्ति कल्पे। अथ तैरेव रवेर्वर्षान्तःपातिभिः कुदिनैश्चक्रकला लभ्यन्ते, तदैकेन किम्? इति। फलं मध्यमा रविगतिरित्युपपन्नम्।

अथ चन्द्रभगणोपपत्तिः।—तत्रादौ तावद् ग्रहवेधार्थं गोलबन्धोक्तविधिना विपुलं गोलयन्त्रं कार्य्यम्। तत्र खगोलस्यान्तर्भगोल आधारवृत्तद्वययोपरि विषुवद्वृत्तम्। तत्र च यथोक्तं क्रान्तिवृत्तं भगणांशाङ्कितञ्च बद्ध्वा कदम्बद्वयकीलकयोः प्रोतमन्यच्चलं ग्रहवेधवलयम्। तच्च भगणांशाङ्कितं कार्य्यम्। ततस्तद्गोलयन्त्रं सम्यग् ध्रुवाभिमुखयष्टिकं जलसमक्षितिजवलयंच यथा भवति तथा स्थिरं कृत्वा रात्रौ गोलमध्यचिन्हगतया दृष्ट्या रेवतीतारां विलोक्य क्रान्तिवृत्ते यो मीनान्तस्तं रेवतीतारायां निवेश्य मध्यगतयैव दृष्ट्या चन्द्रं विलोक्य तद्वेधवलयं चन्द्रोपरि निवेश्यम्। एवं कृते सति वेधवृत्तस्य क्रान्तिवृत्तस्य च यः सम्पातस्तस्य मीनान्तस्य च यावदन्तरं तस्मिन् काले तावान् स्फुटश्चन्द्रो वेदितव्यः। क्रान्तिवृत्तस्य चन्द्रबिम्बमध्यस्य च वेधवृत्ते यावदन्तरं तावांस्तस्य विक्षेपः। ततो यावतीषु रात्रिगतघटिकासु वेधः कृतस्तावतीष्वेव पुनर्द्वितीयदिने कर्त्तव्यः। एवं द्वितीयदिने स्फुटचन्द्रं ज्ञात्वा तयोर्यदन्तरं सा तद्दिने स्फुटा गतिः। अथ तौ चन्द्रौ "स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्पय" इत्यादिना मध्यमौ कृत्वा तयोरन्तरं सा मध्यमा चन्द्रगतिः। तयाऽनुपातः। यद्येकेन दिनेनैतावती चन्द्रगतिः, तदा कुदिनैः किम्? इति। एवं चन्द्रभगणा उत्पद्यन्ते। तथा चाह श्रीमान् ब्रह्मगुप्तः।—

> "ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः।
> त्रैराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम्॥"

एवमन्येषामपि भगणोपपत्तिः।

अथ चन्द्रोच्चस्य।—एवं प्रत्यहं चन्द्रवेधं कृत्वा स्फुटगतयो विलोक्याः। यस्मिन् दिने गतेः परमाल्पत्वं दृष्टं, तत्र दिने मध्यम एव स्फुटश्चन्द्रो भवति; तदेवोच्चस्थानम्। यत उच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमाल्पत्वम्। ततश्च तस्माद् दिनादारभ्यान्यस्मिंश्चन्द्रपर्य्यये प्रत्यहं चन्द्रवेधात् तथैवोच्चस्थानं ज्ञेयम्। तच्च पूर्वस्थानादग्रत एव भवति। यत् तयोरन्तरं तज्ज्ञात्वाऽनुपातः क्रियते। यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरिदमुच्चयोः अन्तरं लभ्यते, तदैकेन किम्? इति। फलं तुङ्गगतिः। तयाऽनुपातात् कल्पभगणाः।

अथ चन्द्रपातभगणोपपत्तिः।—एवं प्रत्यहं चन्द्रवेधाद्दक्षिणविक्षेपे क्षीयमाणे यस्मिन् दिने विक्षेपाभावो दृष्टः, क्रान्तिवृत्ते तत्स्थानं चिन्हयित्वा तत्र यावान् विधुः स भगणाच्छुद्धः पातः स्यादिति ज्ञेयम्। क्रान्तिवृत्ते तत् स्थानं पूर्वस्थानात् पश्चिमत एव भवति। अतो ज्ञाता पातस्य विलोमा गतिः; सा चानुपातात्। यद्येतत्कालान्तरदिनैरेतावत् पातयोरन्तरं लभ्यते, तदैकेन किम्? इति। फलं पातगतिः। तया प्राग्वत् कल्पभगणाः।

अथ रवितुङ्गोपपत्तिः।—मिथुनस्थे रवौ कस्मिंश्चिद्दिने रेवतीतारकोदयाद्यावतीभिर्घटिकाभी रविरुदितस्तावतीभिः मीनान्ताल्लग्नं साध्यम्। यल्लग्नं, स तदा स्फुटो रविर्ज्ञेयः। एवमन्यस्मिन् दिनेऽपि। तयोः स्फुटार्कयोरन्तरं स्फुटा गतिः। एवं प्रत्यहं स्फुटगतयो ज्ञातव्याः। यस्मिन् दिने गतेः परमाल्पत्वं तद्दिने यावान् रविस्तावदेद रवेरुच्चं भवति। तस्योच्चस्य चलनं वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यते। किन्त्वाचार्य्यैश्चन्द्रमन्दोच्चवदनुमानात् कल्पिता गतिः। सा चैवम्,—यैर्भगणैः साम्प्रताहर्गणाद्वर्षगणाद्वा एतावदुच्चं भवति, ते भगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिताः।

अथान्येषां शीघ्रोच्चोपपत्तिः।—तत्र एत एव शनिजीवभूभुवामित्यादि। उच्चो ह्याकर्षको भवति। तेन स्वकक्षामण्डले भ्रमन् ग्रहः स्वाभिमुखमाकृष्यते। तेनाकृष्टः सन् कक्षामण्डले मध्यग्रहादग्रतः पृष्ठतो वा यावतान्तरेण दृश्यते, तावत् तस्य फलं मान्द्यं शैघ्र्यं वा। अहो उच्चो नाम प्रदेशविशेषस्तेन कथमाकृष्यत इति, तदुच्यते। अथोक्तं सूर्य्यसिद्धान्ते।—

"अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम्॥" इत्यादि।

एवमत्रोच्चस्य देवताविशेषत्वेनाङ्गीकृतत्वाददोषः। एतदुक्तं भवति। शनेर्जीवात् कुजाद्वा यदा तु पृष्ठगतोऽर्कस्तदा मध्यग्रहात् स्फुटग्रहोऽग्रतो दृश्यते। यदा तु पृष्ठगतोऽर्कस्तदा मध्यात् स्फुटग्रहः पृष्ठतो दृश्यते। अतस्तेषां त्रयाणां रविसमं शीघ्रोच्चं धीरैः कल्पितम्। अतो रविभगणतुल्याः शीघ्रोच्चभगणा इत्युपपन्नम्।

अथ मन्दोच्चोपपत्तिः।—तत्र वेधेन स्फुटग्रहं ज्ञात्वा तं मन्दस्फुटं प्रकल्प्य ततः शीघ्रफलमानीय तत् तस्मिन् स्फुटे विलोमं कृत्वैवमसकृन्मन्दस्फुटो ज्ञेयः। एवं प्रत्यहं मन्दस्फुटमुपलक्ष्य स मन्दस्फुटो धनमन्दफले क्षीयमाणे यस्मिन् दिने मध्यमतुल्यो भवति, तदा तत्तुल्यमेव मन्दोच्चं ज्ञेयम्। ततस्तस्माद्रविमन्दोच्चवद् भगणाः कल्प्याः। एवं सर्वेषाम्।

अथ बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चोपपत्तिः।—तत्र रविशुक्रयोः पूर्वस्यां दिशि चक्रयन्त्रवेधेनान्तरभागा ज्ञेयाः। ते तयोः स्फुटयोरन्तरांशा जातास्तैः स्फुटार्काद्विशोधितैः

स्फुटः शुक्रो भवति। ततः शुक्रस्य मन्दफलमानीय तत् स्फुटे शुक्रे धनर्णं व्यस्तं कार्य्यम्। रविश्च मध्यमः कार्य्यः। तयोर्यदन्तरं तच्छीघ्रफलमृणं धनञ्च ज्ञेयम्। एवं प्रतिदिनवेधेन तच्छीघ्रफलं परममृणं ज्ञातव्यम्। तत् तादृक् फलमर्कात् तिर्य्यक् स्थितेनोच्चेनाकृष्टस्य भवति। तच्च तिर्य्यक्स्थत्वं त्रिभान्तरितस्य स्यात्। अतस्तत्र त्रिभोनेन स्फुटशुक्रेण तुल्यं शीघ्रोच्चं ज्ञेयम्। एवं पुनरन्यस्मिन् पर्य्यये प्राच्यामेवान्यच्छीघ्रोच्चं ज्ञात्वाऽनुपातः क्रियते। यद्येतत्कालान्तरदिनैस्तयोरुच्चयोरन्तरं लभ्यते, तदैकेन किम्? इति। फलं तुङ्गगतिः। प्राग्वत् तया भगणाः। एवं बुधस्यापि।

अथ भौमादीनां वेधेन प्राग्वद्दक्षिणविक्षेपाभावस्थाने यावान् मन्दस्फुटो ग्रहश्चक्रशुद्धस्तावान् पातः। बुधशुक्रयोस्तु तदा मन्दफलव्यस्तसंस्कृतं यावच्छीघ्रोच्चं चक्रशुद्धं तावान् पातो ज्ञेयः। ततः प्राग्वद्भगणकल्पना।

दीपिका—एकस्मिन्सौरवर्षे रविश्चक्रमेकं भुनक्ति, अतएव कल्पसौरवर्षैः कल्पसौरवर्षतुल्यरविभगणाः स्युरेवमेव बुधशुक्रयोरपि भगणा भवेयुः। यतो बुधशुक्रौ कदाचिद्रवितोऽग्रतः कदाचित्पृष्ठतश्चलन्तौ तस्यानुचराविव दृश्येते। तयोर्गत्योः ह्रासवृद्धेस्तुल्यतया रविभगणभोगकालतुल्य एव तयोरपि भगणो भवत इत्युपपन्नम्।

चन्द्रोच्चभगणोपपत्तिः—आधुनिकयन्त्रपरम्परया रात्रौ चन्द्रं विद्धा चन्द्रविम्बोपरिगतं कदम्बप्रोतवृत्तं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तच्चन्द्रस्थानं राश्यादिकं विज्ञायैवं द्वितीयदिनेऽपि वेधबलयेन चन्द्रं ज्ञात्वा स्फुटखगं मध्यग्रहं प्रकल्प्येति, दिन द्वये मध्यौ विज्ञेयौ। तयोरन्तरं मध्यमा गतिस्स्यात्तथा क्रान्तिवृत्तविमण्डलयोश्च वेधवलये यदन्तरं तच्छरत्वेनाङ्गीकार्यम्। ततश्चानुपातेनैकेन दिनेनैतावती चन्द्रगतिस्तदाकुदिनैः किमिति—चन्द्रभगणा उत्पद्यन्ते।

चन्द्रोच्चभगणोपपत्तिः—यद्दिने शराभाव स्यात्तथा बिम्बीयकर्णस्य च परमाधिकत्वं भवेत्तद्दिने वेधेन चन्द्रो ज्ञातव्यः। तदेव चन्द्रोच्चं स्यादेवं द्वितीयपर्ययेऽपि चन्द्रं ज्ञात्वा तयोरन्तरतुल्यमुच्चगतिस्तु वेधद्वयकालान्तर्गतास्यात्ततो अनुपातेनैक दिनसम्बन्धिचन्द्रोच्च गतिस्तथोच्चकल्पभगणानयनं च सुगमम्।

चन्द्रपातभगणोपपत्तिः—गर्भगोलीयदक्षिणशराभावो यस्मिन्दिने दृष्टस्तत्र स्फुटं चन्द्रं ज्ञात्वा स, च चक्राद्विशोध्यः—स एव पातः स्यात्। अन्यपर्य्ययेऽपि कृत्वा उक्तवत्पातगतिः, पातभगणाश्च विज्ञेयाः।

रवि तुङ्गोपपत्तिः—योऽहि प्रदेशोऽपममण्डलस्य दूरे भुवस्तस्य कृतोच्चसंज्ञेतिगोलाध्यायोक्तानुसारेण मन्दोच्चानामपि गतिरस्तीति—अत्यल्पगतेरनिर्वाच्यत्वात् वर्षशतेनापि तस्य गतिर्नोपलभ्यते—अत एव साम्प्रतोपलब्धमन्दोच्चज्ञानात्कुट्टकेन कल्पमन्दोच्चभगणानयनं सुगमम्। "तच्छिरवायां (टीकायां)" विस्तराद्व्याख्यास्यामः।

भौमगुरुशनीनां शीघ्रोच्चोपपत्तिस्तुः—आचार्यस्य वासना भाष्ये स्फुटा।

भौमगुरुशनीनां मन्दोच्चोपपत्तिः—वेधेन स्पष्टग्रहज्ञानं ततः विलोमेन मन्दस्पष्टग्रहज्ञानं गणितेन मध्यमग्रहश्च वेदितव्यः। मध्यमग्रहमन्दस्पष्टग्रहयोरन्तरं मन्दफलं भवति, तस्य

च यस्मिन्दिनेऽभावो दृष्टस्तद्दिने मन्दस्फुटसम एव मध्यमः स्यात्तदेव मन्दोच्चम्। एवमन्यपर्ययेऽपि ज्ञात्वा मन्दोच्चगतिस्तस्य भगणाश्च पूर्ववत्साध्याः।

बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चोपपत्तिः—मध्यमौ बुधशुक्रौ तु मध्यमरवेः समानौ भवतः अर्कशुक्रबुधपर्ययेत्यादिना ज्ञायते। निशावसाने वेधेन स्फुटार्कशुक्रयोरन्तरभागान् ज्ञात्वा अन्तरेण हीनः रविः स्फुटः शुक्रः स्यात्। स्फुटमन्दस्फुट शुक्रस्यान्तरं शीघ्रफलमिति स्फुटम्। मध्यार्कसममध्यशुक्रस्य, तन्मन्दफल व्यस्तसंस्कृतानीतस्फुटशुक्रस्य च यद्विवरं धनमृणं वा तदेव शीघ्रफलं स्यात्। तत्र स्फुटशुक्राच्छीघ्रोच्चं राशित्रयान्तरे भवितुमर्हति। अतस्त्रिभोगेन स्फुटशुक्रेण समं शीघ्रोच्चं स्यादित्याचार्यस्य मतमिति दिक्।

भौमादीनां पाताभगणोपपत्तिः—एतेषां गर्भीयशरज्ञानं, तस्याभावस्थानञ्चं ज्ञात्वा, तत्र गणितागतो मन्दस्फुट एव चक्रशुद्धपातस्स्यादिति।

शिखा—एक कल्प में पूर्वाभिमुख चलने वाले ग्रहों के जितने भगण होते हैं, वे सब आचार्य ने लिख दिये हैं। इसी प्रकार ग्रहों के मन्दोच्च (मन्दोच्चाकर्षण) और शीघ्रोच्च के जो शक्तिपुञ्ज वा आकर्षण पुञ्ज हैं और उनके अपने स्थान और गति से पूर्व की ओर चलते रहने से कल्प में जितने भगण होते हैं, वे सब लिख दिये हैं। मन्दोच्चों के स्थान प्रायः अत्यन्त मन्द गति से चलते हैं। सैकड़ों वर्षों में भी उनकी गति का ज्ञान होना कठिन है। तब भी महर्षियों ने किसी प्रकार से रवि की मन्दोच्च की गति का ज्ञान किया है। इसी प्रकार ग्रह का भ्रमण मार्ग जिस वृत्त का दीर्घवृत्त में है, उसका और राशिवृत्त का जो सम्पात विन्दु है, उसे पात कहते हैं, वह सम्पात चल होने से उसके भी भगण गिने गये हैं। विशेषतायह है कि इस पात की गति पूर्व की ओर न होकर पश्चिम की ओर हैं अतः इसे विलोमगतिक कहते हैं। इस गणितागत पात को १२ राशि में घटा देने से वह वास्तविक पात होता है। इन सबों के उक्त संख्या के जो भगण हैं, वे किस आधार पर पढ़े गये हैं? इनका क्या बीज है? इत्यादि विचार आवश्यक होता है, इसी को उपपत्ति भी कहते हैं—इसमें कठिनाई यही है कि इस उपपत्ति को सर्वसाधारण नहीं समझ सकते। गणित, खगोल और भूगोल के पारिभाषिक शब्दों के ज्ञान के साथ-साथ खगोल, भूगोल, ग्रहगोल आदि की तथा पृथ्वी की आकाशीय नियत स्थिति के जानने वाले तथा अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित, चापीयगणित, सरल त्रैकोणमितिक गणित, चलराशिकलन, स्थिरराशिकलन प्रभृति अनेक गणितभेदों को जानकर ही ग्रहगणित जाना जा सकता है। इसके बाद (ग्रहगणित ज्ञान के बाद) ही उपपत्ति समझ में आ सकती है। अब जानना यह है कि ग्रह के मन्दोच्च और पातों के एक कल्प में इतनी संख्या के जो भ्रमण होते हैं उसका क्या प्रमाण है? इसका एक ही परम्परागत समाधान है, वह यह कि आगम (प्राचीन ज्ञान परम्परा) को प्रमाण मानकर ही आगे चल सकते हैं। किन्तु भगणों के सम्बन्धमें अनेक आचार्यों के ग्रन्थों में अनेक तरह की भिन्नता पाई जा रही है उनमें किसे प्रामाणिक मानें? क्योंकि—लेखक, अध्यापक, पढ़नेवाले आदि के परम्परागत दोष से आगमशास्त्र भी इतने दीर्घकाल में अनेक प्रकार का हो गया है। अतः इसकी प्रमाणता में भी पूर्ण विश्वास नहीं हो रहा है, फिर भी यहाँ पर गणित स्कन्ध की एक उत्कृष्ट विशेषता उनके प्रत्यक्ष प्रमाण की

है क्योंकि गणित का फल प्रत्यक्ष होता है। यही प्रत्यक्ष प्रमाणीय गणित उपपत्तिमान है इसे ही आगम कहना चाहिए। आगम की प्रधानता सदा रहेगी तो क्योंकि वह वस्तु उपपत्ति सिद्ध होगी ही, ऐसा कहने में भी कुछ संकोच सा होता है। आगम तो सर्व साधारण के समझने की चीज है, किन्तु उपपत्ति तो अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि युक्त पुरुष ही समझ सकते हैं। इसलिये उपपति से भी इन भगणों की यही इयत्ता होगी, यह कहने में संकोच ही होगा। क्योंकि पुरुष की अधिक से अधिक आयु १०० वर्ष की है, उपपत्ति के लिए तो प्रतिदिन ग्रह को वेध से जानना चाहिए जब तक उसका भगण पूरा न हो जाय—इस प्रक्रिया को हम १०, ५ दिन, २, ४ महीना या वर्ष दो वर्ष, १० वर्ष तक चला सकते हैं किन्तु शनि जैसा ग्रह तो ३० वर्ष में भगण पूरा करता है तथा मन्दोच्चों के भगण तो सैकड़ों हजारों वर्षों में भी पूरे नहीं होंगे—इसलिये यह वेध प्रक्रिया से भी एक जीवन में इदमित्थम् कहना कठिन है—तब क्या किया जाय ? ऐसी कठिन स्थिति में तारतम्य को समझते हुये अत्यन्त प्रौढ़ प्राज्ञ गणक (ज्योतिषी) से स्वीकृत किसी प्राचीन ग्रह गणित सिद्धान्त को आगम मानकर उसके गणित और गोल के अनुसार अपना विशेष पाण्डित्य दिखाते हुये, भ्रान्ति से अन्य गणकों के अन्यथा कथित अर्थ का निराकरण करने के लिये कई गणितमर्मज्ञ, अन्य ग्रन्थ विशेष की रचना करते हैं। ऐसा आशय लेकर वे चलते हैं। ग्रहगणित की इतिकर्तव्यता में हमने अपना कौशल दिखाना चाहिए, जो कोई भी आगम हो हमारा गणितः उभयतः जैसे भी ठीक होगा वैसा हम करेंगे—कि जैसे इस सिद्धान्त शिरोमणि में भास्कराचार्य का आचार्य ब्रह्मगुप्त के मत को ही मैंने आगम माना है—ऐसा स्वयं का कथन है। तब तक भगणों की इयत्ता के लिये उपपत्ति सीमित रहे। अब यदि उपपत्ति कहें तो इतरेतराश्रय दोष की शङ्का से उपपति कथन अशक्य होगा—इत्यादि ऐसा होते हुये भी संक्षिप्त में उक्त भगणों की उपपत्ति तो कहूँगा ही क्योंकि इतरेतराश्रय दोष तो दोषाभास है। उपपति भेदों को युगपद से कहने में असमर्थ्य है। इति—

रवि भगण की उपपत्ति—एक वर्ष में रवि का १ भ्रमण पूरा होता है, जिसे १ भगण कहेंगे। इसलिये एक कल्प में जितने सौर वर्ष हैं रवि के भगणों की भी उतनी संख्या हुई। बुध और शुक्र ये दो ग्रह रवि के अनुचर की तरह कभी रवि से आगे और कभी पीछे और कभी रवि के तुल्य ही होते हैं। गतियों के ह्रास वृद्धि के औसत से इनका भी भगण, एक सौर वर्ष में रवि के एक भगण के तुल्य होगा—अतः कल्प सौर वर्ष में भी बुध और शुक्र के भगण भी कल्प सौरवर्ष की संख्या के तुल्य होंगे ही।

सावन दिनोपपत्ति—वज्रलेप से परिपक्व तथा जल या पारा आदि से भूमि को समतल बनाकर उसमें किसी इष्ट व्यासार्द्ध से एक वृत्त बनाना चाहिए। इस वृत में प्राची, प्रतीची उत्तरा और दक्षिणा दिशा तथा विदिशा का भी सम्यक्-ज्ञान करना चाहिए। इस वृत्त में ३६०° की कल्पना करनी चाहिए तथा एक अंश में ६० कला तथा एक कला में ६० विकला आदि का भी संकेत करना चाहिए। तब इस वृत्त के पूरब बिन्दु से अत्यल्प दूरी पर दक्षिण की तरफ उत्तरायण सूर्य में वृत्त के मध्य केन्द्र विन्दु में स्थापित द्वादशांगुल शङ्कु से रवि का उदय वेध करना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक रवि के उदयों का प्रतिदिन वेध करते रहना चाहिए। इस प्रकार वेध करते

रहने पर ३६५ संख्यक उदय तो पूरे होंगे, अन्तिम उदय, पूर्व प्रथम दिन के उदय से कुछ नीचे दक्षिण की तरफ ही होगा, इन दोनों, सर्व प्रथम तथा सर्वान्तिम उदयों के बीच का जो अन्तरित चाप है उसमें जो कला विकला हो उसे गिन कर एक जगह लिख के रख देना चाहिए। फिर दूसरे दिन पुनः रवि का उदय देखना चाहिए। यह उदय सर्व प्रथम उदय चिह्न से कुछ उत्तर की तरफ ही होगा। इस उत्तर चिह्न और सर्व प्रथम दिन सम्बन्धी चिह्न के बीच के चाप की कलादि गिन कर एक जगह लिख लेनी चाहिए। तब अनुपात करना चाहिए कि दोनों दिनों के उदयों के अन्तरों के चाप की कलादि में ६० घटी (२४ घण्टा) मिल रही है तो जो एक पहिले वाला दक्षिण तरफ का अन्तर है उसमें क्या मिलेगा? इस त्रैराशिक से १५ घटी, ३० पल २२ विपल और ३० प्रति विपल और मिलेंगे इसे ३६५ दिन में जोड़ देने से एक सौर वर्ष में ३६५।१५।३०।२२।३० दिनादि होंगे। इसलिये कल्प सौर (४३२००००००) वर्ष में कितने सावन दिन होंगे? उस एक सौर वर्ष सम्बन्धी सावन दिन संख्या को कल्प सौर वर्ष से गुणा करने पर एक कल्प सौर वर्ष सम्बन्धी सावन दिन संख्या निकलेगी।

एक सौर वर्ष के अन्त में यह जो सावन दिन संख्या (३६५।१५।२२।३०) है इसमें रवि का भ्रमण एक भगण=१×१२ रा×३०°×६० कला=२१६०० कला के तुल्य होता है तो १ एक सावन दिन में रवि की गति कितनी होगी? इस अनुपात से रवि की एक सावन दिन की गति=५९ कला ८ विकला...मिलेगी इसे मध्यमा गति कहनी चाहिए।

उक्त सावन दिन ज्ञान के वैज्ञानिक उत्तम साधन का यह प्राचीन प्रयोग विशेष स्तुत्य है, इसमें अयन चलन सम्बन्धी जो विकार है उसमें एक वर्ष में अयनगति का अनिर्वाच्य अन्तर होने से विकार नहीं होगा आधुनिक पाश्चात्य गणितज्ञों के साथ इसमें जो कुछ अन्तर पड़ेगा वह आगे की चक्रसारिणी से स्पष्ट होगा।

चन्द्रभगणोपपत्तिः—इस वेध के लिये जैसे कहा गया है पहिले एक सुन्दर गोल यन्त्र की रचना करनी चाहिए। गोल यन्त्र बनाने की विधि यह है। लौह धातुमय या दारु (लकड़ी) मय-बांस वगैरह की पतली छीली लकड़ियों से आधी इन्च के विस्तार के और बड़े या छोटे गोल के परिमाण के अनुसार नियत एक माप के कम से कम १९ संख्या के बाँस की छीले चिकने प्रायः ४ या ५ गज लम्बे तैय्यार कर उन्हें मोड़ कर वृत्ताकार बनाना चाहिए। फिर अपने खमध्य में ४ बाँस के वृत्तों को जोड़ देना चाहिए। सुदृढ़ सूत से बाँध कर ये चार वृत्त १ पूर्वापर, २, याम्योत्तर, ३, ईशान से नैऋत्य तक ४, वायु से अग्नि कोण तक ले जाने चाहिए। पूर्वापर याम्योत्तर का सम्पातोत्पन्न कोण ९०° और पूर्वापर याम्योत्तर का आधा करने वाला कोण वृत्त ४५° का होना चाहिए। फिर अपने देश के अक्षांश के मुख्य याम्योत्तर में दक्षिण या उत्तर हटकर निरक्ष देशीय पूर्वापर वृत्त बनाना चाहिए। इस निरक्ष खमध्य और याम्योत्तर का जो सम्पात है वहाँ से ९०° (डिग्री) उत्तर ध्रुव और दक्षिण ९०° में दक्षिण ध्रुव स्थान मानना चाहिए। और अपने खमध्य से भी ९०° उत्तर ९०° दक्षिण में क्षितिज संसक्त उत्तर और दक्षिण समस्थान याम्योत्तर वृत्त में मानना चाहिए। दोनों ध्रुवों पर और दोनों

समस्थानों पर गये हुये दो वृत्त जो उनपर समकोण बना रहे हैं उन्हें भी बाँधना चाहिए। तब इन चार वृत्तों का पूर्वापर याम्योत्तर क्षितिज और ध्रुवों में गया हुआ वृत्त ऊनमण्डल या निरक्ष देश (जैसे लङ्का आदि) का क्षितिज जहाँ पर दो सम्पात हो वहाँ पूर्व की ओर पूर्व स्वस्तिक, और पश्चिम की ओर पश्चिम स्वस्तिक की कल्पना करनी चाहिए। इस पूर्व स्वस्तिक विन्दु पर किसी समय सृष्ट्यादि मेषादिकाल मानते हुए एक और राशिवृत्त (जिसमें १२ राशियाँ एक राशि में ३०° और १° में ६० कला आदि अंकित हों) अश्विनी आदि २७ नक्षत्र स्थान बाँधना चाहिए। यह चलवृत्त होना चाहिए अर्थात् नाड़ीवृत्त से निरक्ष देशीय क्षितिज में दोनों ध्रुवों में गया हुआ ऊनमण्डल संज्ञक जो वृत्त है उसमें मेषादि विन्दु से २४° उत्तर और २४° दक्षिण तक इस चलवृत्त को यथा समय चलाना चाहिए। मेषान्त क्रान्ति १२° होती है (स्थूल) इसको ९० में घटाया तो ७८° की मेषान्त का द्युज्या चाप होगा, एवं वृषान्त क्रान्ति $१२+८=२०°$ इसे ९० में घटाया तो वृषान्त युज्या ७०°, तथा $९०-(१२+८+४)=६६°$ यह मिथुनान्त द्युज्या चाप होगा। फिर कर्कान्त सिंहान्त और कन्यान्त की भी द्युज्याएँ तथा तुलान्त वृश्चिकान्त, धन्वन्त की द्युजाएँ एवं मकर कुम्भ मीन की द्युज्याएँ बनाकर ध्रुव से प्रत्येक द्युज्या चाप तुल्य व्यासार्ध से जो वृत्त बनेगा उसे, मेषान्ताहोरात्र, वृषान्ताहोरात्र इत्यादि नाम से कहा जावेगा। ये मेषादि ६ अहोरात्र उत्तर गोल एवं तुलादि ६ अहोरात्र दक्षिण गोल में होंगे। ये सब वृत्त नाड़ी वृत्त के समानान्तर होंगे।

इस गोल बनाने में प्रत्येक वृत्त के साथ दो सम्पात होंगे, इस गोल का जो एक सूक्ष्म केन्द्र विन्दु है उसे गर्भ केन्द्र कहना चाहिए तथा इसी को भूगर्भ विन्दु भी मानना चाहिए। भूगर्भ विन्दु में होते हुये दोनों ध्रुवों पर गया हुआ एक सूत्र बाँधना चाहिए उसे ध्रुव सूत्र कहेंगे, इसी प्रकार दोनों समस्थानों में गया सूत्र समसूत्र, दोनों खमध्यों में ऊर्ध्वाधर, दोनों निरक्षखमध्यों में निरक्षोर्ध्वाधर, पूर्वपश्चिम स्वस्तिकों में पूर्वापर, अहोरात्र के साथ निरक्ष क्षितिज के दो सम्पातों में बंधा सूत्र निरक्षोदयास्त सूत्र, अपने क्षितिज में बधा सूत्र स्वोदयास्त सूत्र, १२ राशियों के १२ सूत्र सोदयास्त नाम के पूर्वापर सूत्र के सामानान्तर, और १२ निरक्षोदयास्त सूत्र भी नाड़ीवृत्त धरातलगत पूर्वापर सूत्र के सामानान्तर होंगे। तथा निरक्षोदयास्त सूत्र और स्वोदयास्त सूत्र का अन्तर भी कुज्या के तुल्य होगा। एवं दृक्कुज सूत्र, इष्ट कालीन शङ्कु, इष्ट हृति, अन्त्या आदि अनेक खगोलीय उप करणों की उक्त गोल में यथा स्थान स्थिति बनाकर तथा गर्भ केन्द्र से ध्रुव की तरफ एक नलिका भी बनानी चाहिए। क्रान्ति वृत्त के साथ एक और चलवृत्त का सम्पात भी बनाना चाहिए, यह चलवृत्त विमण्डल नाम से प्रसिद्ध है प्रत्येक ग्रह का विमण्डल (उसका भ्रमण मार्ग) भिन्न-भिन्न होगा, विमण्डलगत ग्रह का क्रान्तिवृत्त के साथ जो दक्षिणोत्तर अन्तर है उसकी शरसंज्ञा कही गई है। इस विमण्डल का पृष्ठीय केन्द्र विन्दु ध्रुव से ध्रुवभ्रमवृत्त में अपने शरतुल्य (शरसंस्कृत क्रान्तितुल्य) दूरी पर होगा उसे कदम्ब स्थान कहा जावेगा। यह तो हुई गोल बनाने की विधि। अब इस गोल से ग्रह गोलीय ग्रहज्ञान प्रणाली कितने-कितने चमत्कार की है जो आज तक अनवरत अविच्छिन्न धारा से चली आ रही है उसे भी समझना चाहिए।

चन्द्रभगणोपपत्तिः—गणित गोल कुशल शिल्प शास्त्री से—इस प्रकार की उत्तम गोल रचना कर शास्त्रोक्त मर्यादा से इसका पूजन प्रतिष्ठा और इसमें अनन्त ब्रह्माण्ड की स्थापना करानी चाहिए। फिर सुन्दर समतल भूमि पर ध्रुव की ओर इसकी ध्रुवनलिका द्वारा ध्रुव वेध जिस स्थिति में हो उसी स्थिति में इस गोल को रखना चाहिए। फिर स्वच्छ आकाश में वेध से रेवती तारा को देखते हुये क्रान्तिवृत्त में जो २७ नक्षत्र और १२ राशियों का चिह्न किया गया है, उसमें मीन राशि का अन्तिम विन्दु रेवती तारा में निवेश करना चाहिए। गोल मध्यगत दृष्टि से चन्द्रमा को देखकर इस वेध वलय (वेध करनेवाली नलिका) को चन्द्रमा जहाँ गोल में दीखे वहाँ रखना चाहिए। नाड़ीवृत्त से क्रान्तिवृत्त प्राचीन आचार्यों के मत से २४° उत्तर या दक्षिण तक जाता है, इसलिये नाड़ीवृत्त के जो दो पृष्ठीय केन्द्र उत्तर और दक्षिण ध्रुव विन्दु हैं यहाँ से २४° उत्तर गोल में ध्रुव विन्दु से उत्तर की ओर और दक्षिण गोल में दक्षिण ध्रुव के दक्षिण में क्रांतिवृत्त के ये दो पृष्ठीय केन्द्र होंगे जिन्हें उत्तर और दक्षिण कदम्ब कहेंगे। जिस ग्रह विम्ब को, आकाश में जहाँ देखते हैं और यहाँ पर चन्द्रमा को जहाँ पर देखा है, उसी जगह पर (वेधवृत्त को) इन दोनों कदम्बों में गया हुआ जो चलवृत्त है उसे ही वेध वलय कहते हैं इसे, जिसका वेध करना है उस ग्रह पर यहाँ पर चन्द्रमा पर रखना चाहिए। इस वेधवृत्त (कदम्ब दोनों पर और चन्द्रमा पर गया हुआ) और क्रांतिवृत्त का जहाँ पर सम्पात हो वहाँ से मीनान्त विन्दु तक जो अन्तर हो, उसे राश्यादिक गिन लेना चाहिए। जो राशि अंश कला विकला क्रान्तिवृत्त में मिली—यही वेध से उपलब्ध स्पष्ट चन्द्रमा हुआ चन्द्रविंब के मध्य में होते हुए दोनों कदम्बों पर गया हुआ जो उक्त वेध वलय है इस वेध वलय में चन्द्रमा से लेकर क्रान्तिवृत्त के सम्पात तक चन्द्रमा का, क्रान्तिवृत्त से चन्द्रमा उत्तर हो तो उत्तर, दक्षिण हो तो दक्षिण शर हुआ। इस प्रकार प्रथम रात्रि में वेध से जिस प्रकार चन्द्र स्पष्ट का और चन्द्रमा के शर का ज्ञान किया इसी तरह दूसरी रात्रि में भी इसी समय वेध कर दूसरे दिन का स्पष्ट चन्द्रमा और चन्द्रमा का शर जानना चाहिए। इन दोनों स्पष्ट चन्द्रों का अन्तर १ दिन की चन्द्रमा की गति और शरों का अन्तर १ दिन की चन्द्रमा के शर की गति होगी। फिर स्पष्टाधिकार में कही गई रीति से चन्द्रमा का मध्यम जानकर मध्यमा गति ज्ञान करते हुये—एक दिन में इतनी गति है तो कल्प के जो दिन (कुदिन) हैं उसमें क्या मिलेगा? उत्तर में चन्द्रमा के एक कल्प के भगण हो जावेंगे—इसी प्रकार हमारे गणक सार्वभौम प्रागाचार्यों ने अन्य ग्रहों के कल्प के भगणों का भी ज्ञान किया था।

चन्द्रोच्च के भगण की उपपत्ति—किसी भी ग्रह की उसके उच्च विन्दु पर रहने से परमाल्प गति होती है और ग्रह अपने नीच पर रहे तो उसकी परमाधिक गति होती है और हमारी दृष्टि से ग्रह विम्ब बड़ा दिखाई देता है। यह सिद्धान्त है। अब उक्त वेध परम्परा से चन्द्र स्पष्ट का और चन्द्रमा की गति का ज्ञान करते रहना चाहिए जिस दिन गति की परमाल्पता आई समझना चाहिए कि इस दिन का वेध साधित चन्द्रमा की जो राश्यादि है वही उच्च की राश्यादि है, उच्च का ज्ञान हो गया। इसी प्रकार फिर वेध करते-करते दूसरी पारी से चन्द्रमा का उच्च ज्ञान करना चाहिए। अब दोनों चन्द्रोच्चों का अन्तर कर यदि एक वेध से दूसरे वेध तक के समय में यह उच्च गति मिलती है तो १ दिन

में क्या मिलेगा ? उत्तर में चन्द्रमा की एक दिन की उच्च की गति का ज्ञान होगा फिर कल्प कुदिन से गुणने पर एक कल्प में चन्द्रमा के भगणों का ज्ञान हो जावेगा।

चन्द्रपात भगणोपत्ति—उक्तवेध प्रणाली से जिस दिन दक्षिणशर का अभाव देखा गया उस स्थान की राश्यादि को १२ में घटा देने से चन्द्रपात का ज्ञान कर फिर द्वितीय पर्यय में भी पात ज्ञान कर उक्त परम्परा से चन्द्रमा के पात भगण का ज्ञान सम्यक् हो जावेगा।

सूर्य के उच्च भगण की उपपत्ति—चन्द्रोच्च की तरह रवि के उच्च का भी ज्ञान करना चाहिए था। फिर दूसरी बार तीसरी बार वेध करते रहने पर भी रवि की उच्च गति का ज्ञान नहीं हुआ—तब क्या ऐसा कहना चाहिए कि रवि का उच्च अचल है? नहीं क्योंकि भास्कराचार्य ने स्वयं कहा है कि "सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात्प्रकल्पिता तुंगगतिर्गतिज्ञैः" इस प्रकार वेध से सूर्य का मन्दोच्च ज्ञान तो हुआ, इसी को हजारों वर्षों तक स्थिर माना गया। हजारों वर्षों पर वेध से उच्च बिन्दु खिसका है ऐसातो ज्ञान हुआ पर इसके चलने में कितना काल लगा ऐसा ज्ञान एक पुरुष की आयु में होना असंभव हुआ। और वेध का कार्य वंश परम्परा के लिए छोड़ना था सो भी संभव नहीं हुआ। अब एक ही उपाय है कि पूर्व से पूर्व के आचार्यों ने रवि का उच्च बिन्दु जिस जगह पर माना है, उसे अभी तक आगम की तरह माना जा रहा है। (पूर्वाचार्यों के एतिहासिक काल की भी इयत्ता नहीं है जिससे गणित किया जाय।) इसे आगम मान कर और महान् अति प्रसिद्ध असाधरण कुट्टक गणित के आधार पर, उच्च की अव्यक्त, कल्पना कर अव्यक्त का (जैसे क, ल, प. इत्यादि) जो मान अंक में आया वही कल्प कु दिन में रवि के उच्च का भगण पढ़ा है—वह क्रिया इस प्रकार समझनी चाहिए।

कल्पना करिये कि कल्परविमन्दोच्च का भगण = या

शक वर्षादि काल में सृष्टयादि से सौर वर्ष गण = १९७२९४७१७९

वर्त्तमान चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शक—

$$\text{१८८३ में सौर. वर्षगण} = \overline{\text{१८८३}}$$

$$= \text{इ. सौ. व. १९७२९४९०६२}$$

अनुपात किया यदि कल्पसौर वर्ष में कल्प रवि भगण "या" के बराबर है तो उक्त इष्ट सौर वर्ष गण में रवि मन्दोच्च क्या होगा ?

$$\frac{\text{या} \times \text{इ. सौ. व.}}{\text{क. सौ. व.}} = \text{र. म. उ. भ}$$

$$\text{क.सौ.व}\Big)\begin{array}{l}\text{या} \times \text{इ. सौ. व.} \\ -\text{क.सौ.व.} \times \text{का}\end{array}\Big(\text{का}$$

$$\text{शेष} \quad = \text{१९७२९४९०६२ या} - \text{४३२००००००० का} = \text{शे.}$$

सूर्य मन्दोच्चमष्टाद्रयोंऽशा भवेदित्यादि से आधुनिक काल में परम्परागत सूर्य मन्दोच्च का मान ७८° माना गया है।

उक्त शेष को ३६० से गुणा कर दें और कल्प सौर वर्ष से भाग दें और जो आवे उसको ७८° के बराबर मान लें तो समीकरण का स्वरूप निम्न तरह का होगा।

$$\frac{\text{३६० (१९७२९४९०६२×या--४३२००००००००' का)}}{\text{४३२००००००००}} = \text{'३८}^{\circ}$$

$$\therefore \text{३६० (१९७२९४९०६२' या—४३२००००००००का} = \frac{\text{४३२००००००००} \times \text{३८}^{\circ}}{\text{१२००००००}}$$

$$\therefore \text{१९७२९४९०६२ या—४३२००००००००का} = \frac{\text{४३२००००००००} \times \text{३८}^{\circ}}{\text{३६०}}$$

$$\text{अथवा १९७२९४९०६२ या—४३२००००००००का} = \frac{\text{१२००००००} \times \text{३८}^{\circ}}{\text{१}}$$

$$\text{यतः} \frac{\text{४३२००००००००}}{\text{३६०}} = \text{१२००००००}$$

संशोधन से

$$\text{४३२००००००००} \text{ का} = \text{१९७२९४९०६२ या—९३६००००००}$$

$$\therefore \text{का} = \frac{\text{१९७२९४९०६२ या—९३६००००००}}{\text{४३२००००००००}}$$

$$\text{हर अंश ८ में ८ का भाग देने से} = \frac{\text{२४६६१८६३२ या—११७००००००}}{\text{५४०००००००}}$$

यहाँ हारभाज्य और शेष को ५५६७०१ से अपवर्त्तन देने पर स्वल्पान्तर से का $= \frac{\text{४४३या—२१०}}{\text{९७०}}$ हुआ। यहाँ पर ४४३ कोकिससे गुणा करें और उसमें २१० घटा दें और ९७० का भाग दें तो लब्धि=का के होगी गुणक अंक, या का मान होगा। इस उत्तर को निकालने के लिये भास्कराचार्य का प्रसिद्ध कुट्टक गणित देखना चाहिए। बीजगणित और कुट्टक गणित से लब्धि=का का मा, न=२१९गुणक=या, का मान=४८० हुआ यही एक कल्प में रवि के मन्दोच्च का भगण हुआ। इस भगण को जानने का एक और भी उपाय हो सकता है। वह यह कि—किसी भी समय रवि की विम्ब कला, और स्पष्ट रवि का ज्ञान वेध से करना चाहिए। फिर जितने दिनों में उक्त रवि विम्ब कला के तुल्य बिम्ब कला हो, वेध से इसे जान कर, इन दोनों वेधों के अन्तर काल (दिन) का स्पष्ट रवि जानना चाहिए, मध्य दिन में यह वेध होना चाहिए। इस वेधागत रवि के तुल्य ही रवि का मन्दोच्च हो सकता है। क्योंकि मन्दोच्च से प्राक् और पश्चात् तुल्यकाल में बिम्ब कला की समता हो सकती है। फिर किसी दूसरी आवृत्ति में भी उक्त प्रक्रिया से मन्दोच्च का ज्ञान कर दोनों का यदि अन्तर कुछ भी हुआ तब तो अन्तर दिन की गति ज्ञान से १ दिन की ज्ञान ततः कल्पगतति भगण ज्ञान सुलभ हो जायगा। नहीं तो बराबर वेध करते रहना चाहिये किसी समय अवश्य अन्तर मिलेगा ही जिसकी भगण ज्ञान के लिये परमावश्यकता है, आचार्य ने भगण ज्ञान के लिये अनेक युक्तियां कही हैं उन्हें समझते हुए भगण ज्ञान करना चाहिए ऐसा भी लिखा है।

भौमगुरु और शनि के शीघ्रोच्चोपपत्तिः—उच्च पदार्थ, ग्रह के कक्षा मार्गमें एक आकर्षण केन्द्र पुञ्ज है। आकाश में वह वायु की रस्सी की तरह यह उच्च ग्रह को दाहिने और बायें खींचता रहता है, जिस तरफ से ग्रह उच्च के निकट हो उसी तरफ खींचता है इसलिये मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह उच्च के दक्षिण आकर्षण से अधिक, और बाम-आकर्षण से ऋणफल होने से मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह पीछे (कम) भी होता रहता है। शनि गुरु और मंगल इन तीनों का शीघ्रोच्चाकर्षण केन्द्र पुञ्ज रवि है, इनसे जब रवि आगे रहता है, मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह आगे रहने से अनुलो माकर्षण से फल धन होता है, पीछे रहने से विलोम आकर्षण से ऋण फल होता है, इनकी यह सब स्थिति रवि के वश होती है अतएव इन तीनों का उच्च भी रवि सम होने से रवि के भगण तुल्य ही शनि मंगल और गुरु के उच्च भगण हुये। अथवा उक्त तीनों ग्रहों में किसी एक का परमाधिक स्थानीय कर्ण जिस दिन होगा उस दिन का स्पष्ट ग्रह ही इनका उच्च होगा। इसी प्रकार द्वितीय पाली में भी परमाधिक स्थानीय कर्ण जानकर स्पष्टग्रह ज्ञान कर दोनों स्पष्ट ग्रहों के अन्तर के ज्ञान से १ दिन की गति जान कर कल्पगत भगण ज्ञान भी सुगम है।

मन्दोच्चोपपत्तिः—वेध से स्पष्ट ग्रह ज्ञान के बाद विलोम क्रिया से मध्यम ग्रह को स्थिर कर जिस दिन धन मन्दफलाभाव हो उस दिन का मध्यम ग्रह ही मन्दस्पष्ट ग्रह होगा और यही मन्दोच्च भी होगा—द्वितीय पर्यय में भी एवं मध्यम ग्रह (नित्य मन्दस्पष्ट ग्रह ज्ञान से) से मन्दोच्च ज्ञान कर १ दिन की गति ज्ञान के बाद—कल्पगत भगण आनयन सुगम होगा। बुध शुक्र के शीघ्रोच्च की उपपत्ति-मध्यम रवि के तुल्य ही मध्यम बुध और मध्यम शुक्र होते हैं—यह बात पहले बता दी गई है। किसी दिन स्वच्छ आकाश में रात्रि शेष के समय प्रायः प्रातःकाल ४-६ बजे तक पूर्व दिशा में शुक्र और सूर्य का अन्तरांश वेध से ज्ञान करना चाहिये। स्पष्ट सूर्य से यह अन्तरांश कम कर देने से शुक्र स्पष्ट ज्ञात होगा। इसका और मन्दस्फुट शुक्र का अन्तर शीघ्र फल होगा। मध्यम रवि के तुल्य मध्यम शुक्र और मन्दफल विलोम संस्कृत पूर्व में लाये हुये स्फुट शुक्र का गोल युक्ति से, जो धन या ऋण अन्तर है यही शीघ्रफल होगा—वेध से प्रति दिन के वेध से परम शीघ्रफल लाना चाहिए। यह स्थिति प्रायः स्पष्टशुक्र से शीघ्रोच्च के ९०° तीन राशि की दूरी पर कक्षा मध्यतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त के सम्पात में संभव होगी। इस लिये शुक्र में ३ राशि कम करने से जो राश्यादिक होगी वही शुक्रका शीघ्रोच्च होगा, ऐसा ही द्वितीय पर्यय में जान कर-फिर १ दिन की शीघ्रोच्च गति जाननी चाहिए ततः कल्पगत शीघ्रोच्च भगण का ज्ञान करना चाहिए।

विशेष—यह सब वेध आदि से लाये गये अन्तर अंश भू पृष्ठ से हुये। इसे भूगर्भ केन्द्र सम्बन्ध का होना चाहिए था—गर्भ और पृष्ठ का स्वल्पान्तर मानने से आचार्य की प्रक्रिया ठीक कहनी चाहिए।

वास्तव में भास्कराचार्य के सूर्य और शुक्र के अन्तर अंश, और वेध से सिद्ध शर से क्रान्ति वृत्तीय अन्तरांश को जान कर गर्भीय और पृष्ठीय शुक्रों के अन्तर में संस्कार कर गर्भ गोल में स्पष्ट शुक्र और स्पष्ट रवि का अन्तर होगा—तब शीघ्र फल लाकर शीघ्रोच्च ज्ञान करने से पूर्व की अपेक्षा विशेष सूक्ष्मता कही जावेगी।

पात भगणोपपत्ति—भौमादि ग्रहों का पृष्ठाभिप्रायिक शर ज्ञान से गर्भीयशर जानकर इस शर के अभाव स्थान में जितना गणितागत मन्द स्पष्ट ग्रह होगा उसको १२ में घटा देने से चक्र शुद्ध पात होगा ही। बुध शुक्र के पात भगणों में अंक अधिक है, गणित में गौरव पड़ता है अतः आचार्य लाघव के लिये यहां पर केन्द्र भगण कम करके शेष को ही पात—भगण मानते है। इसलिये शरसाधनोपयोगी, मन्द स्पष्ट शुक्र और मध्यम सूर्य का अन्तर रूप जो मन्द फल है उससे व्यस्त (उलटा) संस्कृत शीघ्रोच्च स्थान में जो शर होगा वही सर्वत्र होगा अतः बुध शुक्र के शराभाव स्थान में मन्दफल के अव्यस्त (अनुलोम) संस्कृत शीघ्रोच्च को १२ में घटा देने से चक्र शुद्ध पात होगा।

एक कल्प में ग्रहों के ग्रह मन्दोच्चों के, ग्रह शीघ्रोच्चों के और ग्रहों के पातों की भगण बोधक चक्र सारणी।

		सूर्य सिद्धान्त मत से	ब्रह्मगुप्ताचार्य मत को आगम रूप में माने गये भास्कराचार्य के मत से
सूर्य भगण	=	४३२०००००००	४३२०००००००
चन्द्रमा का भगण	=	५७७५३३३६०००	५७७५३३०००००
चन्द्रोच्च भगण	=	४८८२०३०००	४८८१०५८५८
मंगल का भगण	=	२२९६८३२०००	२२९६८२८५२२
मंगलका उच्चका भगण	=	४३२०००००००	४३२०००००००
बुध भगण	=	४३२०००००००	४३२०००००००
बुध शीघ्रोच्च भगण	=	१७९३७०६००००	१७९३६९९८९८४
गुरु भगण	=	३६४२२०००	३६४२२६४५५
गुरु शीघ्रोच्च भगण	=	४३२०००००००	४३२००००००
शुक्र भगण	=	४३२००००००००	४३२००००००००
शुक्र शीघ्रोच्च भगण	=	७०२२३७६०००	७०२२३८६४१२
शनि भगण	=	१४६५६८०००	१४६५६७२९८
शनि शीघ्रोच्च भगण	=	४३२०००००००	४३२०००००००
नक्षत्र भगण भगण	=	१५८२२३७८२८०००	१५८२२३६४५००००
सूर्य मन्दोच्च भगण	=	३८७	४८०
भौम मन्दोच्च भगण	=	२०४	२९२
बुध मन्दोच्च भगण	=	३६८	३३२
गुरु मन्दोच्च भगण	=	९००	८५५
शुक्र मन्दोच्च भगण	=	५३५	६५३
शनि मन्दोच्च भगण	=	३९	४१
चन्द्रपात भगण	=	२३२३३८०००	२३२३१११६८
भौमपात भगण	=	२१४	२६७
बुधपात भगण	=	४८८	५२१
गुरुपात भगण	=	१७४	६३
शुक्रपात भगण	=	९०३	८९३
शनिपात भगण	=	६६२	५८४

ग्रहों का भगण भोग काल (सावन दिनों में)।

	सूर्य सिद्धान्त मत से	भास्कराचार्य मत से	आधुनिक-अनुसन्धान से
सूर्य	३६५।१५।३१।३१·४.	३६५।१५।३०।२२·५	३६५।१५।२२।५६·८७
चन्द्र	२७।१९।१८।१·६	२७।१९।१८।०·२५	२७।१९।१७।५८·८६६
चन्द्रोच्च	३२३२।५।३७।१३·६	३२३२।४४।२।४५	३२३२।३४।३१।१४·०८८
राहु	६७९४।२३।५९।२३·५	६७९२।१५।१४।१४·७	६९९८।१६।४४।२४
वुध शी.उ.	८७।५८।१०।५५·७	८७।५८।११।१४·३७	८७।५८।९।२४·९८९
गुरु	४३३२।१९।१४।२०·९	४३३२।१४।२४।१९·२	४३३२।३५।५।१७·४९
शुक्र शी.उ.	२२४।४१।५४।५०·६	२२४।४१।५२।३४·७	२२४।४२।२।४७·४८६
भौम	६८६।५९।५०।५·८७	६८६।५२।५२।३३·७	६८६।५८।४६।२·५१८
शनि	१०७६५।४६।२३।४·१	१०७६५।४८।५४।५१·२	१०७५९।१३।१०।५७·४९

एक कल्प में सौर चान्द्र नाक्षत्र सावन अधिमास, क्षयमासादिकों की दिन संख्याबोधक चक्र।

	सूर्य सिद्धान्त के मत से	भास्करीय सिद्धान्त शिरोमणि के मत से
नक्षत्र दिन संख्या	१५८२२३७८२८०००	१५८२२३६४५००००
चान्द्र दिन संख्या	१६०३०००080000	१६०२९९९००००००
सौर दिन संख्या	१५५५२००००००००	१५५५२००००००००
सावन ,, ,,	१५७७९१७८२८०००	१५७७९१६४५००००
अधिमा. दि.	१५९३३३६०००	१५९३३०००००
क्षयदिन संख्या	२५०८२२५२०००	२५०८२५५००००

विभिन्न मतों से ग्रहों का परमशर बोधकचक्रं कलात्मकम्।

चन्द्रमा	मंगल	बुध	वृहस्पति	शुक्र	शनि	
२७०	९०	१२०	६०	१२०	१२०	सूर्य सिद्धान्त से
२७०	१०६	१३८	७४	१३०	१३०	महासिद्धान्त
२७०	११०	१५२	७६	१३६	१३०	ब्राह्मसिद्धांत और सिद्धान्त शिरोमणि से
३०८।४२	१११।५	४२०।१०	७८।५२	२०३।३७	१४९।३९	अन्य मत से

अथ भभ्रमानाह।—

खखेषुवेदषड्गुणाक्षतीभभूतभूमयः।
शताहता १५८२२३६४५०००० भपश्चिमभ्रमा भवन्ति काहनि ॥७॥

काहनि ब्रह्मदिन एतावन्तो भानां पश्चिमभ्रमा भवन्ति। अत्रोपपत्तिर्गोले "समं भसूर्य्यावुदितौ" इत्यादिना कथिता व्याख्याता च।

दीपिका—"समं भसूर्यावुदितो किलार्क्षी"—इत्यादिना "तत्संख्यका भभ्रमतो निरुके" इत्यनेन च आब्दिककुदिनसंख्यातः वार्षिकभभ्रमसंख्याया एकाधिकत्वात् कल्पकुदिनकल्पभगणयोर्योगः कल्पभभ्रमाणि भवन्तीत्युपपन्नम् ।

शिखा—स्वयं आचार्य ने गोलाध्याय में इसकी उपपत्ति अतिविस्तृत रूप से कही है। एक वर्ष में नक्षत्रोदय संख्या से रवि की उदय संख्या १ कम होने से कल्प रवि सावन दिन + कल्प र भगण = कल्प नक्षत्र दिन।

अथ सूर्याहांश्चान्द्राहांश्चाह।—

विधिदिने दिनकृद्दिवसाः करे-
न्द्रियशरेषु भुवाऽर्बुदसंगुणाः १५५५२००००००००।
नवनवाङ्कराभ्ररसेन्दवः
प्रयुतसंगुणिता १६०२९९९०००००० विधुवासराः ॥८॥

अत्रोपपत्तिः। रविवर्षाणि दिनीकृतानीति सुगमम् चन्द्रार्कयोर्यावन्तः कल्पे योगास्तावन्तः किल शशिमासाः। ते तु योगा भगणान्तरतुल्याः स्युः। उभयोरपि प्राग्गमनात्। अतो भगणान्तरतुल्याः शशिमासा भवन्ति। ते त्रिंशद्गुणाः शशिदिवसा भवन्तीत्युपपन्नम्।

दीपिका—क. सौ. व. × १२ = क. सौ. मा.

∴ कल्प सौरमास × ३० = कल्पसौरदिनानि, उपपन्नानि—

शिखा—१ कल्प के सौर वर्षों ४३२०००००० को १२ से गुणा करने पर १ कल्प के सौर मास ५१८४०००००० हुये। इस सौर मास को ३० से गुणा करने पर (५१८४०००००० × ३०) = १५५५२०००००००० ये एक कल्प में सौर दिन हुये।

इसी प्रकार कल्प चन्द्र भगण में कल्प र. भगण घटा देने से कल्प चन्द्र मास होंगे। चन्द्रमास को ३० से गुणने पर एक कल्प की चान्द्र तिथियाँ होती हैं।

चन्द्र भगण = ५७७५३३००००००
रवि भगण = − ४३२००००००
५३४३३३००००० = कल्प चान्द्र मास।
× ३०
एक कल्प की तिथियाँ हुईं। = १६०२९९९००००००

अथ कुदिनान्याह।—

भूदिनानि शरवेदभूपगोसप्तसप्ततिथयोऽयुताहताः १५७७९१६४५००००।
भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा ॥९॥

एषामुपपत्तिः प्रागेवोक्ता। एकस्मिन् रविवर्षे यावन्तो भभ्रमाः स्युस्तावन्त एवैकोना रविसावनदिवसा भवन्ति। यतो रविः प्राग्गत्या एकं पर्य्ययं गतः,

अतो भगणसंख्ययोना भभ्रमाः कहा भवन्ति । एवमन्येषामपि ग्रहाणां कुदिनानि स्युरित्युपपन्नम् ।

दीपिका—नक्षत्रोदय—१=रविसावनदिनानि ।

कल्पनक्षत्रोदय—कल्परविभगणः=कल्परविसावनदिनानि ।

एवमेव—कल्प नक्षत्र दिन—कल्प चन्द्र भगण=कल्पचन्द्रसावनदिनानि ।

,, ,, ,,—,, भौम ,, = ,, भौम ,, ,,

उपपन्नम्

शिखा—कल्पना कीजिये कि उदय क्षितिज में किसी रात्रि में एक नक्षत्र और एक ग्रह अपनी कक्षाओं में एक काल में ही उदित हुये। ठीक २४ घण्टे बाद पुनः आकाश में देखिये तो मालूम पड़ेगा कि नक्षत्र तो क्षितिज में उदय हो गया, किन्तु ग्रह अभी तक दृष्टि पथ में नहीं आया। फिर कुछ देर बाद ग्रह का भी क्षितिज में दर्शन हुआ—इससे यह पता लगा कि नक्षत्र तो २४ घण्टे में अपनी जगह पर आया अर्थात इस नक्षत्र में स्वत्रं कोई गति नहीं है—प्रवह की गति से यह भगण पश्चिमाभिमुख चल कर अपनी जगह पर आते हुए फिर भ्रमण करेगा—किन्तु ग्रह अपनी गति से पूरब को गया ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। ऐसा बराबर वेध करने से ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जब ग्रह अपनी गति से नित्य पूरब को जाता रहेगा तो कुछ काल में या कुछ दिन या कुछ मास या कुछ वर्षों में यह ग्रह अपनी गति के अनुपात से क्रान्ति वृत्त का पूरा चक्कर कर, पुनः किसी भी रात्रि इसी उक्त नक्षत्र के साथ आजावेगा तो इतने समय में नक्षत्र के जितने चक्कर क्रान्तिवृत्त भ्रमण के हुये हैं उससे १ संख्या कम ग्रह के चक्कर होंगे तो यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष उपपन्न हो गया कि ग्रह की सावन दिन संख्या से नक्षत्र की सावन दिन संख्या १ अधिक हुई।

अतः कल्प में जितनी नक्षत्रोदय संख्या है उतने में किसी भी ग्रह की भगण संख्या कम कर देंगेतो इस ग्रह का कल्प सम्बन्धी सावन दिन हो जावेगा।

जैसे— कल्प नक्षत्रोदय=१५८२२३६४५००००

कल्प रविभगण= — ४३२००००००

=कल्प रवि सावन दिन संख्या=१५७७९१६४५००००

इसी प्रकार चन्द्रमा, मंगल बुध आदि सभी ग्रहों के सावन दिनों का ज्ञान हो जावेगा।

जैसे— कल्प भभ्रम संख्या=१५८२२३६४५००००

,, ,, चन्द्र भगण=—५७७५३३००००००

यह कल्प चन्द्र सावन दिन=१५२४४८३१५०००० हुआ।

ऐसे ही कल्प भभ्रम संख्या=१५८२२३६४५००००

तथा ,, कुज भगण=— २२९६८२८५२२

अतः यह कल्प कुज सावन दिन=१५७९९३९६२१४७८ संख्या हुई।

इसी प्रकार बुध शीघ्रोच्च सावन दिन = १५६४२९९८५१०१६
,, शुक्र............... १५७५२१४०६०५०८
,, गुरु ,, ,, १५८१८७२२३५८५
,, शनि ,, ,, १५८२०८९८८२३०२
,, चन्द्रोच्च... ,, १५८१७८८३८८१८२

इत्यादि।

अथाधिमासान् न्यूनाहांश्चाह।—

लक्षाहता देवनवेषुचन्द्राः १५९३३००००० ।
कल्पेऽधिमासाः कथिताः सुधीभिः।
दिनक्षयास्तत्र सहस्रनिघ्नाः
खबाणबाणाश्व्यद्विखेषुदस्राः २५०८२५५०००० ॥१०॥

अत्रोपपत्तिः।—अत्र प्रकृतास्तावद्रविमासास्तेभ्यश्चान्द्रमासा यावद्भिरधिकास्तेऽधिमासा उच्यन्ते। एवं प्रकृतानां सावनानां चान्द्राणां चान्तरमवमान्युच्यन्ते। सावनदिनेभ्यश्चान्द्राहा यावद्भिरधिकास्ते दिनक्षयाः। अतस्तेषामन्तरमेतावद्भवतीत्युपपन्नम्।

दीपिका, चान्द्रमास—रवि मास = अधिमासाः।
तथा, चान्द्रदिन—सावन दि. = क्षयदिनम्।

शिखा—जैसे एक कल्प में चान्द्रमास = ५३४३३३००००००
,, ,, सौर मास = ५१८४००००००

अतः एक कल्प में, सौर चान्द्र मासों का अन्तर = अधिमास संख्या के तुल्य १५९३३०००००हुआ।
इसी प्रकार १ कल्प के चान्द्र दिन संख्या में एक कल्प की सावन दिन संख्या कम कर देने से एक कल्प के क्षय दिनों की संख्या होगी।

इदानीमधिमासेन्दुदिनावमानि प्रकारान्तरेणाह।—

रवेः कोटिनिघ्नाः कृताष्टेन्दुबाणाः ५१८४००००००
सुराग्न्यब्धिरामेषवो लक्षनिघ्नाः ५३४३३३००००० ।
शशाङ्कस्य मासाः पृथक् सूर्य्यमासै-
र्विहीनास्तु कल्पेऽथवा तेऽधिमासाः ॥११॥
अधिदिनैर्दिनकृद्दिनसञ्चयः सहित इन्दुदिनान्यथ तानि वा।
विरहितानि च तानि दिनक्षयैः क्षितिदिनान्यत उत्क्रमतोऽपरम् ॥१२॥

एवमनया वासनया पठितार्कचन्द्रमासान्तरमधिमासाः। किं पाठेनेति वाशब्दार्थः। एवमधिमासदिनैः सहिताः सौराहाश्चान्द्राहा भवन्ति। किं तत्पाठेन वा। तेऽवमैरूनाः कहाः स्युर्वा।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—जैसे चान्द्रमास में सौर मास कम करने से अधिक मास होते हैं, तो अधिक मास में सौर मास जोड़ने से चान्द्रमास होंगे वैसे ही क्षयदिन में सावन दिन जोड़ने से भी चान्द्रदिन होंगे—अर्थात् किन्हीं दो संख्याओं के योग अन्तर (जहाँ जैसी स्थिति हो) से तीसरी संख्या का ज्ञान सुगम है ।

इदानीं प्रकारान्तरेण चान्द्रमासान् दिनक्षयांश्चाह ।—

अन्तरं तरणिचन्द्रचक्रजं यद्भवेत् स विधुमाससञ्चयः ।
चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं चन्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः ।।१३।।

पूर्वार्द्धस्य वासना प्रागेवोक्ता । अथ चन्द्रचक्रदिनैक्ये चन्द्रमासभदिनैक्येन वर्जिते क्षयाहाः स्युः ।

अत्र वासना ।—चन्द्रभगणा रविभगणैरूनाश्चन्द्रमासाः स्युः । अतो विपर्य्ययाच्चन्द्रमासोनाश्चन्द्रभगणा रविभगणा भवन्ति । तैरूना भभ्रमाः सावनदिवसा भवन्ति । तैरूनाश्चान्द्राहाः क्षयाहा भवन्ति । एतदव्यक्तस्थित्या लिख्यते । चंमा ं१ चंभ १ । एते किल रविभगणाः । एभिरूनाः भभ्रमाः संशोध्यमानमृणं धनं भवतीति जाताः सावनाः । चंमा १ भभ्रमा १ चंभ ं१ । एभिरूनाश्चान्द्राहा जाताः चंभ १ चंदि १ चंमा १ भभ्र ं१ । एवं क्षयाहा भवन्तीत्यपपन्नम् । एतच्छिष्याणां धनर्णयोगवियोगकौशलार्थं दर्शितम् ।

दीपिका—स्पष्टम्

शिखा—चं.भ.—र. भ.=चान्द्रमास । अतः र. भ.=चं. भ.—चां. मा. । यतः भभ्रम—र. भ.=र. सा. दि. । तथा चां. दि.—सा. दि.=क्षयदि. । सावन दिन का उत्थापन देने से चांदि—(भभ्रम—र. भ.)=चां. दि.—भभ्रम+र. भ. यह स्वरूप हुआ । इसे (१) संकेत देने से यतः र. भ.=चं. भ.—चां. मा. अतः (१) समीकरण में जो र. भ. है उसकी जगह उत्थापन देने से चां.दि.—भभ्रम+चं. भ.=चान्द्रमास—ऐसा हुआ । यही=चां. दि.+चं. भ.—(भभ्रम+चां. मा.)=क्षय दिन । अर्थात्—सूर्य चन्द्रमा के भगणों का अन्तर चान्द्रमास होता है । चान्द्रदिन और चन्द्र भगण के योग में भभ्रम और चान्द्रमास का योग कम कर देने से क्षय दिन होते हैं यह सब उपपन्न हुआ ।

इदानीमन्यदाह ।—

इन्दुमण्डलगुणेन्दु १३ संगुणत्र्यभ्रचक्रविवरेऽधिमासकाः ।
खेचरोच्चभगणान्तरोन्मिताः सन्ति मन्दचलकेन्द्रपर्य्ययाः ।।१४।।

अत्रोपपत्तिः ।—चन्द्रभगणा रविभगणोनाश्चन्द्रमासा भवन्ति । तेऽधिमासज्ञानार्थं रविमासोनाः कार्य्याः । रविमासास्तु द्वादशगुणितै रविभगणैर्भवन्ति ।

पूर्व्वमेकगुणैरूना इदानीं द्वादशगुणैश्च । अतस्त्रयोदशगुणै रविभगणैरूनाश्चन्द्रभगणा अधिमासा भवन्तीत्युपपन्नम् । उत्तरार्द्धेन केन्द्रस्वरूपमुक्तम् ।

इति भगणाध्यायः ॥२॥

∵ चा. मा.—र. मा.=अधिमासाः ।

किन्तु चां. मा.=चं. भ.—र. भ. तथा र. मा.=१२×र. भ.

∴ चं. भ.—र. भ.—१२×र. भ.=चं. भ.—१३ र. भ. इत्युपपन्नम् ।

पर्वतीयकेदारदत्तकृतदीपिकाटीकायां भगणाध्यायः समाप्तः ।

शिखा—चन्द्रभगण में तेरह गुणित रविभगण कम करने से भी अधिमास हो जाते हैं। ग्रहों के मन्दोच्च-भगण और ग्रह भगण के अन्तर से ग्रहों के केन्द्र भगण आदि भी होते हैं।

शिखा टीका में भगणाध्यायः समाप्त ।

अथ ग्रहानयनाध्यायः

इदानीमहर्गणानयनमाह ।—

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वितः ।
खदहनै ३० र्गुणितस्तिथिसंयुतः
पृथगतोऽधिकमास १५९३३००००० समाहतात् ॥१॥
रविदिना १५५५२०००००००० प्तगताऽधिकमासकैः
कृतदिनैः सहितो द्युगुणो विधोः ।
पृथगतः पठितावम २५०८२५५०००० संगुणाद्
विधुदिना १६०२९९९०००००० प्तगतावमवर्ज्जितः ॥२॥
भवति भास्करवासरपूर्व्वको दिनगणो रविमध्यमसावनः ।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिकमत्र न गृह्यते ॥३॥

स्पष्टम् ।

अत्र वासना ।—कल्पगताब्दा द्वादशगुणिता रविमासा जाताः ते चैत्रादिगत-चान्द्रतुल्यैः सौरैरेव युताः त्रिंशद्गुणा इष्टमासप्रतिपदादिगततिथितुल्यैः सौरैरेव दिनैर्युताः; एवं ते सौरा जाताः, तेभ्यः पृथक् स्थितेभ्योऽधिमासानयनं त्रैराशिकेन । यदि कल्पसौरदिनैः कल्पाधिमासा लभ्यन्ते, तदेभिः किम् ? इति । फलं गताधि-मासाः । तैर्दिनीकृतैः पृथक् स्थितः सौराहर्गणः सहितश्चान्द्रो भवति, यतः सौर-चान्द्रान्तरमधिमासदिनान्येव । अथ चान्द्राद् द्युगणादवमानयनं त्रैराशिकेन । यदि कल्पचान्द्राहैः कल्पावमानि लभ्यन्ते, तदेभिः किम् ? इति । फलं गतावमानि

तैरूनश्चान्द्रोऽहर्गणोऽतः कर्त्तव्यः; यतः सावनचान्द्रान्तरेऽवमान्येव। एवं कृते सति रवेर्मध्यमः सावनाहर्गणो भवति, न स्फुटः। मध्यमस्फुटाहर्गणयोर्भेदो गोले कथितः। स चाहर्गणोऽर्कादिः; यतः कल्हादौ रविवासरः। अत्राऽधिमासानयनेऽधिमासशेषमनष्टं स्थाप्यम्। न पुनस्तस्माद् दिनाद्यवयवा ग्राह्याः। एवमवमशेषमपि। न तस्माद्घटिकादिकं ग्राह्यम्। नन्वनुपातः सावयवो भवति, कुतस्तदवयवा न ग्राह्याः? तत्कारणं गोले कथितं व्याख्यातञ्च।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—अहर्गण साधन करना है। कल्प से लेकर आज तक (इष्ट दिन तक) जितने दिन होते हैं उन्हें अह्नां गणः अहर्गणः अर्थात् दिवस समूह, दिन वृन्द दिन गण-इत्यादि नामों से व्यवहार में लाया गया है। पूर्व में कही गई प्रक्रिया के अनुसार कल्प से आज तक जितने सौर वर्ष बीत गये उनको १२ से गुणा कर देने से कल्प से इष्ट समय चैत्रादि तक के कल्प गत सौर मास गण कहना चाहिए और इन्हें क. ग. सौ. मा. इस प्रकार लिखना चाहिए यह कल्प गत सौर मास गण किसी इष्ट शक के मेष संक्रमण काल तक के हुये। इनको ३०से गुणा कर देने से कल्प गत सौर दिन हुये अब इसमें सौर मास इष्ट समय तक जैसे वैशाख-ज्येष्ठ-आषाढ़ आदि की १-२-३ संख्या जोड़ देनी चाहिए—किन्तु सौर मास का ज्ञान नहीं होने से चैत्रादि चान्द्र तुल्य सौर मास जोड़ दिया और गत तिथि भी जोड़ दी तब इष्ट तिथि तक के सौर दिन हुये ऐसा समझना चाहिए, परन्तु इसमें सौर और चान्द्र का जो अन्तर है तत्तुल्य अधिक शेष का विकार बना है इसे पीछे सोचना पड़ेगा—तब ऐसी स्थिति समझनी चाहिए ३० (१२×क. ग. सौ. व.+ग. मा.)+ग. ति=इ. सौ. ति.। अब अनुपात से

$$\frac{\text{क. चां. दि.}\times\text{इ. सौ. दि.}}{\text{क. सौ. दि.}}=\text{इ. चां. दि.}\quad \because \text{क. चां. दि.}=\text{क. सौ. दि.}+\text{३० अ.मा.दि.}$$

क. चां. दि. के. स्वरूप का उत्थापन देने से $\frac{(\text{क. सौ. दि.}+\text{३० अ. मा. दि.})\ \text{इ. सौ. दि.}}{\text{क. सौ. दि.}}$

$$=\frac{\text{क. सौ. दि.}\times\text{इ. सौ. दि.}}{\text{क. सौ. दि.}}+\frac{\text{३० अ. मा. दि.}\times\text{इ. सौ. दि.}}{\text{क. सौ. दि.}}=\text{इ. चां. दि.}=\text{इ. सौ.}$$

$\text{दि.}\times\text{३० ग. अ. दि.}+\frac{\text{३० ग. अ. मा. शे.}}{\text{क. सौ. दि}}$ कल्प से इष्ट तिथि तक चान्द्र दिन हो गये।

अब इन्हें सावन बनाना चाहिए।

$$\because \frac{\text{क. सा. दि.}\times\text{इ. चां. दि.}}{\text{क. चां दि.}}=\text{इ. सा. दि.}\quad \text{तथा क. सा.}=\text{क. चां.}-\text{क. क्ष. य. दि.}$$

$$\therefore \text{इ. सा. दि.}=\frac{(\text{क. चां.}-\text{क. क्ष})\ \text{इ. चां. दि.}}{\text{क. चां. दि.}}$$

$$=\frac{\text{क. चां. दि.}\times\text{इ. चां. दि.}}{\text{क. चां दि.}}-\frac{\text{क. क्ष. दि.}\times\text{इ. चां. दि.}}{\text{क. चां. दि.}}$$

$$=\text{इ. चां. दि.}-\left(\text{इ. ग. अ. दि.}-\frac{\text{अ. शे.}}{\text{क. चां.}}\right)=\text{इष्ट सावन दिन।}$$

अमावास्या के आगे, और संक्रान्ति के पहिले अधिकमास शेष होता है तथा तिथि के अन्त से सूर्योदय तक अवम शेष (क्षय शेष) रहने से उक्त समीकरण में अधिशेष और क्षय शेष को त्याग देने से भी सावयव अनुपात ग्रहण किया गया है ऐसा समझना चाहिए क्योंकि इन्हें पहले ही जोड़ या घटा दिया गया था। यह अहर्गण बनाने की प्रक्रिया उपपन्न हुई।

इदानीं ग्रहानयनमाह —

द्युचरचक्रहतो दिनसञ्चयः कहहतो भगणादि फलं ग्रहः।
दशशिरःपुरि मध्यमभास्करे क्षितिजसंनिधिगे सति मध्यमः ॥४॥

अहर्गणे भगणगुणे कहृते मध्यमो ग्रहो भवति। स च लङ्कायां मध्यमे रवौ क्षितिजासन्ने कदाचिदूर्ध्वस्थे कदाचिदधःस्थिते भवतीति ज्ञेयम्। तत्कारणं गोले कथितं व्याख्यातञ्च।

दीपिका— $\frac{\text{क. ग्रभ} \times \text{इकु.}}{\text{क. कु.}}$ = भगणादिग्रहः।

शिखा—इष्टकालीन मध्यम ग्रह का ज्ञान इस त्रैराशिक से किया गया हैं। कल्पकुदिन में कल्पग्रह भगण मिलते हैं तो अहर्गण में भगणादि ग्रह कितना होगा। यह ग्रह और आचार्यों के मत से (निरक्षदेशीय) लङ्का के क्षितिज का हुआ, किन्तु सूक्ष्म विचार किया जाय तो किसी भी चापीय त्रिभुज में कोटि कर्ण की विभिन्नता होने से तद्वश साधित गणित में भी अवश्य विभिन्नता होगी, हाँ यदि कोटिकर्ण की स्थूलता से एकरूपता मानी भी जाय तो उक्तग्रह अवश्य क्षितिज में ही होगा। वस्तुतः नाडी क्रान्तिवृत्त के सम्पात बिन्दु से भुज कोटि कर्ण इन तीनों की प्रवृत्ति होती है, फिर तीन राशि पर इनका परमत्व होता है, मध्य में कोटिकर्ण का परम अन्तर होगा, भास्कराचार्य ने इसी अन्तर को परम उदयान्तर कहा है. अतः इस परमोदयान्तर का ज्ञान कर तद्वशेन इष्ट स्थानीय उदयान्तर जानकर उतना संस्कार और उक्तमध्यम ग्रह में कर देने से वह ग्रह क्षितिज स्थान में होगा, अन्यथा नहीं। इस गूढ़ अभिप्राय को आचार्य प्रसिद्ध उदयान्तर गणित कर्म प्रकरण में आगे स्पष्टाधिकार में स्पष्ट करेंगे, यहाँ पर उक्त त्रैराशिक से लाया हुआ मध्यम ग्रह क्षितिज के आस पास ही होगा न कि क्षितिज का, इससे यह ध्वनि "क्षितिजसन्निधिगेसति मध्यमः" सुस्पष्ट है।

इदानीं ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रमाह —

कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वैः १३१४९००००००
न्यूनाहशेषे विहृते लवाद्यम्।
रविघ्नतिथ्याढ्यमनेन युक्तो
रविर्विधुः स्याद्विधुरूनितोऽर्कः ॥५॥

अस्योपपत्तिः ;—चन्द्रार्कयोरन्तरभागैर्द्वादशभिरेकैका तिथिर्भवति। अतस्तिथयो द्वादशगुणास्तयोरन्तरभागा भवन्ति। ते यदि रवौ क्षिप्यन्ते, तदा

शशी स्यात्; इति युक्तमुक्तम्। किन्त्वेवं तिथ्यन्ते भवति। अथ चन्द्र औदयिकः साध्यः। तत्र तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषं वर्त्तते। तच्च सावनम्; तस्य सावनत्वं गोले प्रतिपादितम्। तत्रानुपातेन चान्द्रं कार्य्यम्। यदि कल्पकुदिनैः कल्पचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते, तदावमशेषान्तःपातिभिः कुदिनैः किम्? इति। पूर्वमवमशेषस्य चान्द्रदिनानि भागहारः। इदानीं तानि गुणकारः। तुल्यत्वात् तयोर्गुणकभाजकयोर्नाशे कृते कुदिनानि भागहारः। फलं चन्द्रदिनात्मकं भवति। तद्द्वादशगुणितमंशात्मकं भवति। अतो द्वादशभिः कुदिनानामपवर्त्ते कृते खाभ्रबाण-गिरिरामखत्रिगोशक्रविश्वमितो भागहार उत्पन्नः। तत्र लाघवार्थमाद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहारः पठितः। यतस्तथा कृते एकापि विकला नान्तरं भवति। अतस्तैश्च भागैर्युतोऽर्कः शशी स्यादित्युपपन्नम्।

दीपिका— $\frac{\text{स्प. च.} - \text{स्प. र.}}{१२}$ = तिथिः। स्प. चं.—स्प. र. = १२. ति। इदमेव तिथ्यन्ते चन्द्रार्कयोरन्तरांशसममिति।

औदयिकार्थन्तु, तिथ्यन्तसूर्योदयकालमध्ये सदैव तिष्ठत्यवमाऽवशेष—मित्युक्तत्वा-त्सावनावमशेषस्य चान्द्रत्वसम्पादनायानुपातः कार्यः। स च यथा—

$$\frac{\text{क. चां.} \times \text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.} \times \text{क. चां.}} = \frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.}} = \text{क्ष. शे. सम्बन्धिचान्द्रम्।}$$

$$\therefore \frac{१२ \times \text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.}} = \frac{\text{क्ष. शे.}}{\frac{\text{क. सा.}}{१२}} = \frac{\text{क्ष. शे}}{\text{हार}} = \text{क्षयशेषसम्बन्धिअन्तरांशाः।}$$

$$\therefore \frac{१२ \times \text{क्ष. शे.}}{१५७७९१६४५००००} = \frac{\text{क्ष. शे.}}{\frac{१५७७\cdots}{१२}} = \frac{\text{क्ष. शे.}}{१३१४९००००००९}$$ । अतः रवि +

15779164500,000

$\frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{हार}}$ = चन्द्र इति—

अथवा चन्द्रः— $\frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{हार}}$ = रविरित्युपपन्नम्।

शिखा—अहर्गण बनाते समय सावनात्मक अवमशेष को चान्द्रात्मक बनाकर उसमें १३१४९००००००० का भाग देने से अंशादि लब्धि को १२ से गुणित गत तिथि में जोड़ना चाहिए। इस योग को चन्द्रमा में घटाने से रवि और रवि में जोड़ने से चन्द्रमा हो जावेगा।

इदानीमधिमासाऽवमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनमाह—

कोष्ठाहतैर्यद्भवभैं १७१०००००००० खाप्तं
न्यूनाहशेषे विहृते कलाद्यम्।
तत् स्याद् धनाख्यं तरणेर्विधोस्तत्
त्रिभू १३ हतं स्वेषुगुणांश ३५ युक् स्वम् ॥६॥

चैत्रादियातास्तिथयः पृथक्स्था विश्वैर्हताः सूर्यविधू लवाद्यौ।
तौ चाधिशेषाच्छशिमासलब्ध्या हीनौ युतौ स्वस्वधनाह्वयाभ्याम् ॥७॥

अवमशेषाद्भवभैः कोटिगुणैर्भक्ताद् यल्लब्धं कलाद्यं तद्रवेर्धनसंज्ञं भवति। अथ चैत्रादिगतास्तिथयो द्विः स्थाप्याः। द्वितीयस्थाने विश्व १३ गुणास्तावंशात्मकौ रविचन्द्रौ भवतः। परमधिमासशेषाच्छशिमासभक्ताद् यत् फलं, तेन द्वावप्यूनीकृतौ। तथा स्वस्वफलेन धनाख्येन युक्तौ कृतौ।

अत्रोपपत्तिः;—रविवर्षान्ताद्यावन्तोऽर्कदिवसा गतास्तावन्तोऽर्कभागाः किल भवन्ति। ते कियन्त इति न ज्ञायन्ते। रविवर्षान्तोऽपि न ज्ञायते। अतश्चैत्रादेर्गतास्तिथयो यावन्तस्तावन्त एव सौराहाः कल्पिताः। यथाहर्गणानयने। स एव भागात्मको रविः। असौ पृथग् विश्वगुणः कृतः; यतस्ताभिरेव द्वादशगुणाभिस्तिथिभिर्युक्तः कर्त्तव्यः। तिथौ तिथौ हि रविचन्द्रान्तरं द्वादश भागाः। अथ चैत्रादिगततिथितुल्याः सौराहाः कल्पितास्तेऽधिमासशेषसम्भूतैश्चन्द्रदिनैरधिका जाताः। यतो मध्यममेषसङ्क्रान्तिकालो रव्यब्दान्तः। तस्य चैत्रादेश्चान्तरं तिथ्यात्मकमधिमासशेषम्। यथा गोले कथितम् —

"दर्शाग्रतः सङ्क्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्"। इति

तत् तावत् सौरचान्द्रान्तरमधिकं जातम्। तथा कल्पितचन्द्रदिनसम्बन्धि यत् सौरचान्द्रान्तरं तदप्यधिकं जातम्। तदप्यधिमासशेषसम्भूतम्। एतदुक्तं भवति। अधिमासशेषात् त्रिंशद्गुणात् स्वच्छेदेन हृताद् ये लभ्यन्ते ते चान्द्राहाः। तेषां चान्द्राणां यावन्तः सौरा भवन्ति तैरधिकोऽर्को जातः। अतस्ते शोध्याः। तेषां चान्द्राणां सौरकरणायानुपातः। यदि कल्पचान्द्राहैः कल्पसौराहा लभ्यन्ते, तदा अधिमासशेषस्थैः किम्? इति। पूर्वमधिमासशेषस्य त्रिंशद्गुणस्य सौराहा भागहार इति स्थितम् इदानीं गुणकारः। तुल्यत्वात् तयोर्नाशे कृतेऽधिमासशेषस्य चान्द्राहा भागहारः। ततः पुनर्भाज्यभाजकयोः त्रिंशताऽपवर्त्तने कृतेऽधिमासशेषस्य चान्द्रमासा भागहारः। फलं सौराहाः। त एव भागाः। तैरूनः कल्पितोऽर्को निरन्तरः स्यात्। परं तिथ्यन्ते। असावौदयिकः कार्य्यः। तिथ्यन्ताऽर्कोदययोर्मध्येऽवमशेषम्। तच्च सावनम्। तेन चन्द्रार्कावौदयिकौ कार्य्यौ। तत्रानुपातः। यदि चान्द्राहतुल्येन परमाऽवमशेषेण रविगतिर्लभ्यते, तदेष्टेनानेन किम्? इति। एवमवमशेषं रविगत्या गुणनीयं चान्द्राहैर्भाज्यम्। अत्र गुणकभाजकयो रविगत्याऽपवर्त्ते कृते भागहारे किञ्चित् प्रक्षिप्य कोट्याहतभवभतुल्यः सुखार्थं भागहारःकृतः, स्वल्पान्तरत्वात्। तेन भागहारेणावमशेषे भक्ते याः कला लभ्यन्ते, ताः कला रवौ क्षेप्या इति धनसंज्ञाः। अतो रविगत्या चन्द्रगतौ हृतायां स्वपञ्चत्रिंशदंशाधिकास्त्रयोदश $13\frac{1}{35}$ लभ्यन्ते। अतो रवेर्धनफलं त्रयोदशगुणं स्वपञ्चत्रिंशदंशाधिकं चन्द्रस्य धनं भवतीत्युपपन्नम्। एवं स्वस्वफलेनाधिकौ तिथ्यन्तकालिकौ चन्द्रार्कावौदयिकौ भवत इति सर्वं निरवद्यम्।

दीपिका—अवास्तवः चन्द्रः = १२ ग. ति. + १ ग. ति. = १३ ग. ति.। स्वल्पान्तरात् १ ग. ति. = रविः। अनुपातात् $\frac{\text{अ. शे.}}{\text{क सो.}}$ इदं सौरात्मकं यथास्यात्तथैवम्—

$$\frac{\text{क. सौ.} \times \frac{\text{अ. शे.}}{\text{क.सौ.}}}{\text{क चां}} = \frac{\text{अ. शे.}}{\text{क चां}} \therefore \frac{\text{अ. शे.} \times \text{३०}}{\text{क चां}} = \frac{\text{अ.शे.}}{\frac{\text{क चां}}{\text{३०}}} = \frac{\text{अधिशे.}}{\text{क.चां.मा.}}$$

$$\text{चैत्रादि ग. ति.} - \frac{\text{अ. शे.}}{\text{क.चां.मा.}} = \text{वास्तवतिथ्यन्तकालिकरविः।}$$

$$\text{१३ ग. ति.} - \frac{\text{अ. शे.}}{\text{क. चां.}} = \text{,, ,, ,, चन्द्रः।}$$

$$\frac{\text{र. ग. क.} \times \frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.}}}{\text{१}} = \text{र. ध. फ.} = \frac{\text{र. ग. फ.} \times \text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.}} = \text{र. ध. फ.} = \frac{\frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{क. सा.}}}{\text{र. ग. क.}}$$

$$= \frac{\text{क्ष. शे.}}{\text{उद्दिष्ट हरः}} \text{। एवम्} \frac{\text{र. ध. फ.} \times \text{चं. ग. क.}}{\text{र. ग. क.}} = \text{चं. ध. फ.} = \text{र. ध. क.} \times$$

$$\frac{\text{चं. ग. क.}}{\text{र. ग. क.}} = \text{र. ध. क.} \left(\text{१३}\tfrac{\text{१३}}{\text{३५}}\right) = \text{१३ र. ध. फ.} + \frac{\text{१३ र. ध. फ.}}{\text{३५}} = \text{चं. ध. फ.}$$

अतः वास्तव तिथ्यन्त कालिको रविः + र. ध. फ. = वास्तवोदयकालिकः, रविः।
तथा ,, ,, ,, चन्द्रः + चं. ध. फ. = ,, ,, चन्द्रः।

इत्युपपन्नम् श्लो. ६. ७.

अहर्गण साधन करते समय अवमशेष में पठित २७११………अंक का भाग देने से रवि धनफल कहना चाहिए। १३ गुणित र. ध. फ. के ३५ वें भाग को रवि धनफल में जोड़ने से चन्द्रमा का धनफल होता है। चैत्रादि गततिथियों को रवि के अंश तुल्य मानना चाहिए। इन्हीं चैत्रादि गततिथि को १३ से गुणा करने पर अंशादि चन्द्रमा होता है। अधिशेष में कल्प चान्द्रमास का भाग देने से अंशादि फल को पृथक्-पृथक् सूर्य और चन्द्रमा के पूर्व साधित अंशों के दोनों स्थानों में जो शेष रहे उसमें क्रम से उक्त रवि और चन्द्रमा की धन कला को जोड़ने से मध्यम सूर्य और चन्द्रमा हो जाते हैं।

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह —

अर्कसावनदिवागणो हतः
स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजैः
खाभ्रबाणगिरिरामखत्रिगो-
शक्रविश्व १३१४९३०३७५०० विहृताप्तराशिभिः ॥८॥
विवर्जितो विकर्त्तनो गृहादिको गृहादिकाः
ग्रहा भवन्ति वा बुधैर्विचिन्त्यमन्यदप्यतः ॥९॥

अहर्गणाद् ग्रहस्य कल्पसावनदिनैर्गुणितात् खाभ्रबाणगिरिरामखत्रिगोशक्रविश्वैर्विहृताद् यत् फलं राश्यादि, तेन राश्यादिको रविरूनोऽभीष्टो ग्रहः स्यात् । अस्मादानयनप्रकाराद्बुधैरन्यदपि प्रकारान्तरं विचिन्त्यम् ।

अत्रोपपत्तिः,—भगणैरूनाभभ्रमाग्रहसावनदिवसा भवन्ति । तैः सावनैरूनास्ते भभ्रमा ग्रहभगणा भवन्ति । अतोऽहर्गणाद्ग्रहवदनुपातेन गतभभ्रमान् ग्रहसावनदिवसांश्चानीय तैः सावनैस्ते भभ्रमा वर्जिता यदि क्रियन्ते तदा भगणादिको ग्रहो भवतीत्युपायो दृष्टः । अथ च यो भगणाद्यो रविरागतः, सोऽहर्गणतुल्यैर्भगणैर्युतो यावत् क्रियते तावद्गतभभ्रमा भवन्ति । यतः कुदिनानां रविभगणानाञ्च योगे भभ्रमाः । अत्र भगणानां प्रयोजनाभावाद्राश्यादिरेव रविर्भभ्रमावयवीभूतो गृहीतः । एवं ग्रहगतसावनानयनेऽपि । तत्र ग्रहकल्पसावनैरहर्गणे गुणिते कुदिनैर्हृते भगणादिकं किल फलं भवति । तद् द्वादशगुणितं राश्यादिकं स्यात् । अतः कुदिनानि द्वादशभिः १२ अपवर्त्तितानि भागहारः कृतः । लब्धराशिषु द्वादशतष्टेषु ये भगणा लभ्यन्ते, ते प्रयोजनाभावात् त्याज्याः ; अत उक्तम्—"आप्तराशिभिर्विवर्जितो विकर्त्तनः" इत्यादि । जातं सर्वमुपपन्नम् ।

दीपिका— $\dfrac{\text{क. ग्र. भ.} \times \text{इ. कु.}}{\text{ककु.}} = \text{भगणादिग्रहः ।}$

$$= \frac{(\text{भभ्रम} - \text{ग्र. सा.})\ \text{इकु.}}{\text{ककु.}} \text{ ।}$$

$\because$ भभ्रम $-$ क. ग्र. भ $=$ ग्र. सा. ।

$\therefore$ भभ्रम $=$ ग्र. सा. $+$ क. ग्र. भ. ।

क. ग्र. भ. $=$ भभ्रम $-$ ग्र. सा. ।

भभ्रम $=$ क कु. $+$ र. भ. । उत्थापनेन—

$$\frac{(\text{क कु} + \text{र. भ.} - \text{ग्र. सा.})\ \text{इ. कु.}}{\text{क कु.}} \therefore \frac{\text{क कु} \times \text{इ कु}}{\text{क कु}} + \frac{\text{र. भ.} \times \text{इ कु.}}{\text{क कु}} - \frac{\text{ग्र सा.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क कु.}} = \text{इकु} + \text{र. भ.} - \frac{\text{ग्र. सा.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}}$$

। प्रयोजनाभावात् (इ. कु $+$ र. भ.) इत्यस्यत्यागे—

$$\text{भ. ग्र.} = \text{रा. सू.} - \frac{\text{ग्र. सा.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}} = \text{रा. सू.} - \frac{\text{ग्र. सा.} \times \text{इ. कु.}}{\text{हा.}}$$

उपपन्नम् ।

शिखा– सावन अहर्गण को ग्रहों के अपने-अपने दिनों से गुणा कर गुणनफल में १३१४९३······से भाग देने से राश्यादिक फल को राश्यादि सूर्य में घटाने से राश्यादि मध्यम ग्रह होते हैं । इसी प्रकार और भी ग्रह साधन के उपाय विचारने चाहिए ।

इदानीमानयनप्रकाराणामुपपत्तिमाह—

यथा यथाऽधिमासकाऽवमेन्दुमासपूर्वकाः
परस्परं युतोनिता भवन्ति खेटपर्य्ययाः ॥१०॥
त एव सूर्य्यसावनद्युपिण्डतोऽनुपातजाः
तथा तथा युतोनिता भवन्ति तेऽथवा ग्रहाः ॥११॥

अत्राधिमासावमेन्दुमासपूर्वका इति पूर्वशब्दोपादनादन्येऽप्यभीष्टा राशयो यथा यथा परस्परं युतोनिताः सन्त इष्टग्रहभगणसमा भवन्तीति पूर्वं सम्प्रधार्य्य तानेव राशीन् भगणान् प्रकल्प्याहर्गणादनुपातेन फलानि साध्यानि। तेषां फलानां तथा तथा योगे वियोगे च कृते ग्रहः स्यादिति।

तद्यथा।—

"इन्दुमण्डलगुणेन्दुसंगुणत्र्यघ्नचक्रविवरेऽधिमासकाः"। इति

चन्द्रभगणानां त्रयोदशगुणार्कभगणानां चान्तरे यद्यधिमासा भवन्ति, तदा त्रयोदशगुणार्कभगणाधिमासयोगे चन्द्रभगणाः स्युरित्यर्थाज्ज्ञातम्। अतोऽहर्गणादधिमासग्रहमानीय त्रयोदशगुणोऽर्कस्तेनाधिकश्चन्द्रः स्यादित्येवमादीनि प्रकारान्तरशतान्युत्पद्यन्ते।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—जैसे, चन्द्रभगण और १३ गुणित रवि भगण का अन्तर यदि अधिकमास के तुल्य होता है तो १३ गुणित रविभगण और अधिकमास के योग से भी चन्द्रभगण हो जावेगा—इत्यादि बुद्धिमान् लोग ग्रह साधन की और अनेक रीतियाँ भी स्वयं स्वबुद्धि से निकाल सकते हैं—(यह भाव है)

इदानीमस्योदाहरणभूतानि प्रकारान्तराणि दर्शयन्नाह—

द्विचक्रयोगजो ग्रहो वियोगजेन युग्वियुक्
दलीकृतौ च तौ क्रमादमन्दमन्दगामिनौ ॥१२॥
द्विपर्य्ययान्तरोद्भवग्रहेण वर्जितो द्रुतः
स मन्दगोऽथ मन्दगो युतो भवेदमन्दगः ॥१३॥

अत्राऽऽद्यानयनस्योपपत्तिः सङ्क्रमगणितेन। द्वितीयस्यातिसुगमा।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—दो राशियों का योग और अन्तर जानकर संक्रमण गणित से जैसे दोनों राशियाँ जानी जा सकती हैं वैसे ही दो ग्रहों के योग और अन्तर से दोनों शीघ्र और मन्दिगतिक ग्रहों का भी ज्ञान किया जा सकता है। आचार्य का यही भाव है।

पुनः प्रकारान्तरेणाह —

केन्द्रोच्चयोश्चश्चलयोर्वियोगे योगेऽथवा स्यान्मृदुनोः प्रसाध्यः।
साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथ वा प्रसाध्यः ॥१४॥

अत्रोपपत्तिः;—शीघ्रोच्चाद् ग्रहे शोधिते शीघ्रकेन्द्रं भवति। शीघ्रकेन्द्रे शोधिते ग्रहो भवतीति किमाश्चर्यम्। मन्दोच्चोनो ग्रहो मन्दकेन्द्रम्। तत् केन्द्रं मन्दोच्चेन युतं ग्रहो भवतीति किं चित्रम्। यदि सिद्धग्रहस्य युगभगणैः सिद्धग्रहो लभ्यते, तदा साध्यभगणैः किम्? इति। फलं साध्यग्रहः स्यादित्युपपन्नम्।

दीपिका—शी. उ.—ग्रहः=शी. के.

शी. उ.—शी. के.=सि. ग्रहः

$$\frac{\text{सि. ग्र. भ.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}} = \frac{(\text{शी. उ.—शी. के.})\ \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}}$$

∵ सि. ग्र. ∼ मं. उ.=म. के.

∴ सि. ग्र.=म. उ.±म. के.

$$\because \frac{(\text{म. उ.}+\text{म. के.})}{\text{क. कु.}} = \frac{(\text{म. उ. भ.}+\text{म. के. भ.})}{\text{क. कु.}}\ \text{इ. कु.}$$

$$\frac{\text{म. उ. भ.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}} + \frac{\text{म. के. भ.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. क.}} = \text{म. उ.}+\text{म. के.}=\text{सि. ग्रहः}$$

$$\frac{\text{सि. ग्र.} \times \text{सा. ग्र. भ.}}{\text{सि. ग्र.}} = \text{सा. ग्रहः}\ ।$$

उपपन्नम्

शिखा—शीघ्रोच्च में शीघ्र केन्द्र घटाने से मध्यम ग्रह होता है अथवा मन्दोच्च में मन्द केन्द्र जोड़ने से भी मध्यम ग्रह होता है। सिद्ध मध्यम ग्रह को साध्यभगण से गुणा कर सिद्ध भगण ग्रह का भाग देने से साध्य ग्रह होता है।

अहर्गणान्मध्यमग्रहमानीयेदानीं मध्यमग्रहादहर्गणमाह—

साग्रात् सचक्राच्च खगात् कहघ्नात् तत् कल्पचक्राप्तमहर्गणः स्यात्।
निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन वक्ष्येऽग्रतोऽग्राच्च तथाऽग्रयोगात् ॥१५॥

ग्रहस्य भगणराशिभागकलाविकला अन्ते विकलाशेषञ्च कुदिनैः संगुण्य स्वच्छेदेन विभज्योपर्य्युपरि निक्षिपेत्। तद् यथा—भगणादिग्रहे विकलाशेषावधि कल्पकुदिनगुणे विकलाशेषस्थाने कुदिनैर्विभज्य विकलास्थाने फलं प्रक्षिप्य तत्र षष्ट्या ६० विभज्य कलास्थाने निक्षिप्यैवं भगणान्तं यावत्। तत्र कल्पभगणैर्हृतेऽहर्गणः स्यात्। अत्रोपपत्तिः विलोमगणितेन। तथा निरग्रचकादपि ग्रहात् तथा केवलादग्रादपि तथा शेपयोः शेषाणां वा योगादहर्गणानयनमग्रत इति प्रश्नाध्याये कुट्टकविधिना वक्ष्ये।

दीपिका—

$$\frac{\text{क. ग्र. भ.} \times \text{इ. कु.}}{\text{क. कु.}} = \text{ग. भ.}+\text{ग. रा.}+\text{ग. अं.}+\text{ग. क.}+\text{ग. वि.}+\frac{\text{वि. शे.}}{\text{क. कु.}}$$

$$\therefore \text{क. ग्र. भ.} \times \text{इ. कु.} = \text{क. कु.} \left(\text{ग. भ.}+\text{ग. रा.}+\cdots\cdots \frac{\text{वि. श.}}{\text{क. कु.}}\right)$$

$$\therefore \text{इ. कु.} = \frac{\text{क. कु.}\ (\text{ग. भ.}+\text{ग. रा.}+\text{ग. अं.}\cdots\cdots \frac{\text{वि. शे.}}{\text{क. कु.}}}{\text{क. ग्र. भ.}}$$

इत्युपपन्नम्।

शिखा—विकलान्त-अवयव को अग्र कहा है। किसी ग्रह के प्रति विकलान्त अवयव को कल्प कुदिन से गुणा कर, उसके कल्प भगणों का भाग देने से फल अहर्गण होगा।

इदानीमहर्गणादपि कल्पगतमाह—

अभिमतद्युगणादवमैर्हतात् क्षितिदिनाप्तगतावमसंयुतः।
दिनगणः स भवेत् तिथिसञ्चयः पृथगतोऽधिमाससमाहतात् ॥१६॥
विधुदिनाप्तगताधिकमासकैः
कृतिदिनै रहितोऽर्कदिनोच्चयः।
भवति मासगणः खगुणो ३० दुधृतो
रवि १२ हृतः स च कल्पगताः समाः ॥१७॥

स्पष्टार्थमिदम्। अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकाभ्याम्। अहर्गणानयनाद्विलोम-प्रकारेण कल्पगतानयनं सुगमम्।

दीपिका—

$$\text{इ. चां. दि.} = \frac{\text{क. चा.} \times \text{इ. सा.}}{\text{क. सा.}} = \frac{(\text{क. सा.} + \text{क. क्ष.})\ \text{इ. सा.}}{\text{क. सा.}}$$

$$= \frac{\text{क. सा.} \times \text{इ. सा.}}{\text{क. सा.}} + \frac{\text{क. क्ष. दि.} \times \text{इ. सा.}}{\text{क. सा.}} = \text{इ. सा.} + \frac{\text{क. क्ष. दि.} \times \text{इ. सा.}}{\text{क. सा.}}$$

$$\text{यतः इ. सौ. दि.} = \frac{\text{क. सौदि.} \times \text{इ. चां.}}{\text{क. चां. दि.}}\text{।} \quad \text{सौ. दि.} = \text{चां. दि.} - ३० \times \text{अ. मा.}$$

$$\text{अतः}\quad \text{इ. सौ. दि.} = \frac{(\text{चां. दि.} - ३०\ \text{अ. मा.})\ \text{इ. चां}}{\text{क. चां. दि}}$$

$$= \frac{\text{चा. दि.} \times \text{इ. चां.}}{\text{क. चां.}} - \frac{३०\ \text{क. अ. मा.} \times \text{इ. चां}}{\text{क. चां.}} = \text{इ. चां. दि.} - ३०\text{ग. अ. मा. दि.}$$

शिखा—अहर्गण को कल्प अवम से गुणा कर उसमें कल्प कुदिन का भाग देने से, गत अवम होती हैं। गत अवम को अहर्गण में जोड़न से चान्द्र अहर्गण होता है। चान्द्र अहर्गण को कल्प अधिमास से गुणा कर उसमें कल्प चान्द्र दिन का भाग देने से अधिकमास होते हैं। ३० गुणित अधिमास को चान्द्र अहर्गण में घटाने से—सावन अहर्गण होता है। सावन अहर्गण में ३० का भाग देने से कल्पगत सौर वर्ष का ज्ञान होगा। फिर सौर मास में १२ का भाग देने से कल्पगत सौर वर्ष का ज्ञान हो जावेगा।

इदानीं कलिगतादप्यहर्गणादिकमाह—

कलिगतादथ वा दिनसञ्चयो दिनपतिर्भृगुजप्रभृतिस्तदा।
कलिमुखध्रुवकेण समन्वितो भवति तद्द्युगणोद्भवखेचरः ॥१८॥

अत्र कलिगताहर्गणेऽयं विशेषः।—शुक्राद्यो वारो गणनीयः। यतः कल्पागताहर्गणात् कलिमुखे शुक्रवारो भवति। तत्र च ये ग्रहास्ते ध्रुवसंज्ञाः कल्पिताः। तद्द्युगणभवः खेचरश्च कलिमुखध्रुवकेण समन्वितः कार्य्य इत्यत्र वासनापि सुगमा।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—कलियुगादि जिस दिन हुआ था उस दिन रवि आदि वारों में शुक्रवार का दिन था। अतः कलियुगादि से अहर्गण बनाते समय वार गणना शुक्रवार से प्रारम्भ कर अहर्गणोत्पन्न ग्रह में पठित कल्पादि के ग्रह जोड़ देने से सृष्ट्यादि से इष्ट दिन पर्यन्त के ग्रह हो जावेंगे।

इदानीं कलिमुखग्रहानाह।—

खाद्रिरामाग्नयः ३३७० क्वग्निरामाङ्कका: ९३३१
वेदवेदाङ्कचन्द्रा १९४४ विलिप्ताः क्रमात् ।
षड्रसाङ्गाब्धयो ४६६६ ऽङ्गाभ्रवेदाब्धयो ४४०६
वेदषट्काभ्रभूपाभ्रभूसम्मिताः १०१६०६४ ॥ १९ ॥
वेदचन्द्रद्विवेदाब्धिनागाः ८४४२१४ कर-
द्वाब्धिवेदाब्धिशैला ७४४४२ भवेयुः कुजात् ।
द्वापरान्तध्रुवाश्चक्रशुद्धास्तथा
सूर्य्यतुङ्गेन्दुतुङ्गेन्दुपातोद्भवाः ॥ २० ॥

कुजादीनां सर्वेषां ध्रुवाश्चक्रशुद्धाः पठिता लाघवार्थम् । स्पष्टार्थमिदम् ।

कल्पादौ ग्रहाः

मं.	बु.	गु.	शु.	श.	सू. तुं.	चं. तुं.	चं. पा.
११	११	११	११	११	२	४	५
२९	२७	२९	२८	२८	१७	५	३
३	२४	२७	४२	४६	४५	२९	१२
५०	२९	३६	१४	३४	३६	४६	५८

इति ग्रहानयनाध्यायः

दीपिका—सुस्पष्टम् ।

शिखा—गणित गौरव को लाघव करने के लिए आचार्य ने कल्प से द्वापर के अन्त तक के ग्रहों को साधन कर पढ़ दिया है। कलि आदि से अपने इष्ट समय तक का अहर्गण निकाल कर इसमे ग्रह साधन कर उक्त द्वापरान्तर (कलि युगादि) के ग्रहों में जोड़ देने से कल्प से इष्ट समय तक की ग्रहस्थिति जानने का सुगम उपाय बताया है। प्रायः ये सब मध्यम ग्रह हैं। सूर्य, बुध, और शुक्र इनका मध्यम ग्रह एक ही रूप का होता है, क्योंकि "अर्कशुक्रबुधपर्यया" इत्यादि से आचार्य ने तुल्य भगण इनका कहा है। फिर भी शुक्र और बुध का ११।२८।४६।३४–११।२७।२४।२९=०।१।२२।५ इतना अन्तर हो रहा है। बीज संस्कार सभी ग्रहों के लिये आचार्य ने दिया है अतएव उक्त बुध शुक्र के मध्यमों के स्वल्प वैषम्य का हेतु बीज संस्कार हो सकता है। चन्द्रमा को भी मध्यम सूर्य के तुल्य मान लेने से अमान्त की यह ग्रह-स्थिति होनी चाहिए—ऐसा कह सकते हैं। अत एव आज से

५०६२ वर्ष पूर्व में ग्रहों का स्थानीय स्वल्पान्तरित योग था, जिसे अष्टग्रह योग कहना चाहिए। इति पर्वतीय श्री केदारदत्तीये दीपिकाशिखाख्य—

टीकाद्वयोपेते भास्करीयसिद्धान्त-शिरोमणौ ग्रहानयनाध्यायः समाप्तः।

इदानीं कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनं विवक्षुः खकक्षां तावदाह—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभिः १८७१२०६९२००००००००

ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।

तद् ब्रह्माण्डकटाहसम्पुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनम्

केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ १ ॥

करतलकलितामलकवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम्।

दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥ २॥

एभिर्योजनैस्तुल्यां गणकाः खकक्षामाकाशपरिधिं वदन्ति। तत्र कथमनन्तस्याकाशस्येयत्ता वक्तुं शक्यत इत्याशङ्क्याहर्पतिद्युतियुजो नभसः परिधेरिदं मानं वदन्ति। अत एव पौराणिका गणकास्ते ब्रह्माण्डपरिधिं वदन्ति। केचिल्लोकालोकं वदन्ति। यतस्तदन्तर्वर्त्तिन एवार्करश्मयः। एवमन्ये वदन्तीति नास्माकं मतमित्यर्थः। प्रमाणशून्यत्वात्। करतलकलितसकलब्रह्माण्डगोला एवं वक्तुं शक्नुवन्ति।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—इस आकाशीय कक्षा का मान १८७१······क्यों माना गया, इसपर अनेक विवाद हैं। आकाश में जहाँ तक सूर्य किरणें पहुँचती हैं ("ब्रह्माण्ड सम्पुट परिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य कर प्रसारः") उस परिधि का भी यह प्रमाण हो सकता है। भास्कराचार्य ने आगे के श्लोक में यह मत व्यक्त किया है कि, एक कल्प में अपनी पूर्व गति से ग्रह जितने योजन चलता है उसी को रवि कक्षा (आकाश कक्षा) कहना चाहिए।

जैसे—

इदानीं स्वमतमाह—

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रह- क्रामति योजनानि।

यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥ ३ ॥

स्पष्टार्थम्।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—स्पष्टम्।

इदानीं ग्रहकक्षामाह—

ग्रहस्य चक्रैर्हृता खकक्षा भवेत् स्वकक्षा निजकक्षिकायाम्।

ग्रहः स्वकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्त्तमानः ॥ ४ ॥

सा खकक्षा यस्य यस्य भगणैः ह्रियते तस्य तस्य ग्रहस्य कक्षामितिर्लभ्यते। अस्योपपत्तिरूपं श्लोकस्योत्तरार्द्धमिति; यतः स्वकक्षायां ग्रहो भ्रमन्नजस्रं परिवर्त्तमानः खकक्षामितानि योजनानि पूरयति। अतो ग्रहभगणैर्भक्तायाः खकक्षाया यत् लभ्यते, सा ग्रहकक्षामितिरित्युपपन्नम्।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—ख कक्षा में ग्रह के कल्प भगण का भाग देने से, अपनी कक्षा का मान होता है। ग्रह अपनी कक्षा में घूमता हुआ कल्प में खकक्षा तुल्य योजन पूरा करता है।

इदानीमेवं सिद्धे रवीन्दुकक्षे भकक्षाञ्चाह—

सार्द्धाद्रिगोमनुसुराब्धिमितार्ककक्षा ४३३१४९७½
चान्द्री सहस्रगुणिता जिनरामसंख्या ३२४००० ।
अभ्रेष्विभाङ्कगजकुञ्जरगोऽक्षपक्षाः २५९८८९८५०
कक्षां गृणन्ति गणका भगणस्य चेमाम् ॥ ५ ॥

रवेः कक्षा ४३३१४९७½। चन्द्रकक्षा ३२४०००। भकक्षा २५९८८९८५०। अत्रार्ककक्षातो भकक्षाषष्टि ६० गुणाः। अर्को भषष्ट्यंश इत्यागमप्रामाण्येनाङ्गीकृता। एवमन्येषामपि ग्रहाणां कार्य्याः।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—उक्त रीति से सूर्य कक्षा, चन्द्र कक्षा और नक्षत्र कक्षा का योजनात्मक मान श्लोक और भाष्य से स्पष्ट है।

इदानीं ग्रहगतियोजनान्याह—

कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा
भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्य ।
पादोनगोऽक्षधृतिभूमितयोजनानि ११८५८।४५ ।
खेटा व्रजन्त्यनुदिनं निजवर्त्मनीमे ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्तिः;—यदि कुदिनैः खकक्षामितयोजनानि गच्छन्ति, तदैकेन किम्? इति। फलं दिनगतियोजनानि। तानि च स्थूलत्वेन तावत् पादोनगोऽक्षधृतिभूमितानि स्युः।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—कल्प कुदिन में ख कक्षा योजन तो १ दिन क्या? यह योजन गति होती है।

$$\frac{\text{ख कक्षा}}{\text{कल्प कुदिन}} = \frac{१८७१२०६९२०६४४०००\times १}{१५७७९१६४५००००}$$

= ११८५८।४५ एक दिन की ग्रह की योजनमान में गति हुई।

इसी प्रकार ख कक्षा योजन में ग्रह कक्षा योजन का भाग देने से जैसे—

$$\frac{१८७१२०६९२००००००००}{४३२००००००००} = \frac{\text{ख कक्षा}}{\text{र. क.}} = ४३३१४९७$$

फिर अनुपात से यदि म. चन्द्र कला में उक्त योजन गति मिलती है तो एक कला में क्या योजन ? $= \frac{४३३१४९७}{२१६००} = २००$ स्वल्पान्तर से

$$\frac{\text{दिन गति योजन}}{\text{१ कला योजन}} = \frac{११८५९}{२००} = ५९।१७\frac{७}{१०} = \text{रवि की मध्यमा गति हुई ।}$$

इदानीं ग्रहानयनमाह—

अहर्गणात् कक्षिनवाङ्क ९९२१ निघ्नात्-
नवेन्दुवेदेषुहुताश ३५४१९ लब्ध्या ।
अहर्गणो गोऽक्षधृतीन्दु ११८५९ निघ्नो
विवर्जितः स्युर्गतयोजनानि ॥ ७ ॥
स्वया स्वया तानि पृथक् च कक्षया
हृतानि वा स्युर्भगणादिका ग्रहाः ।

अहर्गणे भूनेत्रनवनन्द ९९२१ गुणे नवशशिश्रुतिबाणाग्निभिः ३५४१९ भक्ते यल्लब्धं, तेन विवर्जितः कार्य्यः। कः ? नन्देन्द्रियधृतीन्दु ११८५९ गुणोऽहर्गणः। एवं गतयोजनानि स्युः। तेभ्यः पृथक् पृथक् स्वया स्वया कक्षया भाजितेभ्यो भगणाद्या ग्रहा लभ्यन्ते ।

अत्रोपपत्तिः;—दिनगतियोजनैरहर्गणे गुणिते गतयोजनानि भवन्तीति सुगमम्। अत्र सुखार्थं गोऽक्षधृतीन्दुभिः ११८५९ सम्पूर्णैरहर्गणो गुणितः। सोऽधिको जातः। यदधिकं तच्छोध्यम्। तस्याधिकस्य ज्ञानार्थमुपायः।—परमोऽहर्गणः कुदिनतुल्यः। तेन गुणकेन गुण्यः। एवं गोऽक्षधृतीन्दुनिघ्नः सन् खकक्षातोऽधिको भवति। तस्मात् खकक्षां विशोध्य शेषेणानुपातः। यदि कुदिनतुल्येनाहर्गणेनैतावदधिकं भवति, तदेष्टेनाहर्गणेन किम् ? इति। अत्र कुदिनानां तस्य शेषस्य च पञ्चपञ्चयुगवेदैरयुतगुणितैः ४४५५०००० अपवर्त्ते कृते सति शेषस्थाने कक्षिनवाङ्का उत्पन्नाः। कुदिनस्थाने नन्देन्दुवेदेषुहुताशाः। एवं त्रैराशिकेन यल्लभ्यते, तेन स्थूलगतिगुणितेऽहर्गणे वर्जिते गतयोजनानि भवन्ति। सर्व्वेषां ग्रहाणां तान्येव, गतेस्तुल्यत्वात्। अथ ग्रहार्थमनुपातः। यदि कक्षातुल्यैर्गतयोजनैरेको भगणः, तदैभिः किम् ? इति। फलं गतभगणाद्याः सर्व्वे ग्रहा भवन्तीत्युपपन्नम्।

दीपिका—$\text{ग. यो.} = \frac{\text{ग्र. ग. यो.} \times \text{अह.}}{\text{१ दिन}} = (११८५९ - \frac{१}{४})\ \text{अह}$

$= ११८५९\ \text{अह} - \frac{\text{अह.}}{४}$

$$\text{ख कक्षा} = \frac{\text{प्र. ग. यो.} \times \text{क. कु.}}{\text{१ दिन}} = (\text{११८५९} - \tfrac{\text{१}}{\text{४}})\ \text{क. कु.}$$

$$= \text{११८५९ क. कु.} - \frac{\text{क. कु.}}{\text{४}}$$

$$\therefore \frac{\text{क. कु.}}{\text{४}} = \text{११८५९ क. कु.} - \text{ख. कक्षा}$$

$$\text{वा,} \frac{\text{क. कु.}}{\text{४}} \times \frac{\text{अह.}}{\text{क. कु.}} = \frac{\text{अह.}}{\text{क. कु.}} (\text{११८५९} - \text{ख कक्षा})$$

$$\therefore \frac{\text{अह.}}{\text{४}} = \frac{\text{११८५९ अह.} - \text{अह. ख कक्षा}}{\text{क. कु.}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{११८५९ अह} - \text{अह ख कक्षा}}{\text{४८५५००००}}}{\dfrac{\text{क. कु.}}{\text{४८५५००००}}}$$

$$= \frac{\text{९९२१ अह.}}{\text{३५४१९}} \therefore \text{ग. यो.} = \text{११८५९ अह} - \frac{\text{९९२१ अह}}{\text{३५४१९}}$$

ग्रहानयनार्थमनुपातः $\frac{\text{१ भ} \times \text{ग. यो.}}{\text{स्व. क. यो.}}$ इत्युपपन्नम्

इति कक्षाध्यायः

शिखा

शिखा—अहर्गण को ९९२१ से गुणा कर ३५४१९ से भाग देकर लब्धि को ११८५९ से गुणित अहर्गण में घटाने से शेष तुल्य कल्पादि से ग्रह योजन संख्या हुई। इस योजन संख्या में प्रत्येक ग्रह की अपनी-अपनी कक्षा का भाग देने से भगणादि मध्यम ग्रह होंगे।

इदानीं विशेषमाह—

> **गृहस्य कक्षैव हि तुङ्गपातयोः**
> **पृथक् च कल्प्यात्र तदीयसिद्धये ॥ ८ ॥**
> **अर्कस्य कक्षैव सितज्ञयोः सा**
> **ज्ञेया तयोरानयनार्थमेव ।**
> **उक्ते तयोर्ये चलतुङ्गकक्षे**
> **तत्रैव तौ च भ्रमतोऽर्कगत्या ॥ ९ ॥**

अत्रोच्चस्य पातस्य च या कक्षाऽऽगच्छति, सा तयोरानयनार्थमेव कल्प्या। अन्यथा या ग्रहस्य कक्षा सैव तयोरपि। यतो ग्रहकक्षाया उच्चप्रदेशस्योच्चव्यपदेशः। यत्र च विमण्डलेन सह सम्पातस्तस्य प्रदेशस्य पातसंज्ञेति गोले सम्यक् प्रतिपादितमस्ति। तथा बुधशुक्रयोश्च ये अर्ककक्षातुल्ये कक्षे आगच्छतस्ते तयोरानयनार्थमेव। किन्तु तयोर्ये चलकक्षे तत्रैव तौ च भ्रमतः परमकर्कगत्या। एतदुक्तं भवति—

भूमध्यादर्कं प्रति नीतं सूत्रं यत्र ज्ञचलकक्षायां लगति, तत्र बुधो ; यत्र शुक्रचल-कक्षायां लगति, तत्र शुक्रो भ्रमतीत्यर्थः ।

इति कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः ॥ ४ ॥

दीपिका—स्पष्टम्

शिखा—ग्रह और उसके उच्चपात की एक ही कक्षा है। उच्च और पात का साधन करते समय उनकी अलग-अलग कक्षा कल्पना करनी चाहिए। बुध और शुक्र का साधन सूर्य कक्षा से ही करना चाहिए। वस्तुतः जिस कक्षा में बुध और शुक्र के उच्च और पात भ्रमण करते हैं उसी में सूर्य गति से या पृथ्वी गति से बुध शुक्र भी भ्रमण करते हैं।

इति पर्वतीये केदारदत्तीये दीपिका-शिखेतिटीकाद्वयोपेते सिद्धान्तशिरोमणौ कक्षाध्यायः ।

इदानीं प्रत्यब्दशुद्धिः । तत्रादौ सावनदिनाद्यमाह—

> अघोघऽस्त्रिघा कल्पयाताब्दवृन्दात्
> कराभ्यां कृतैः पावकैः $\begin{smallmatrix}\text{२}\\\text{४}\\\text{३}\end{smallmatrix}$ संगुणाच्च ।
> भुजङ्गैरवाप्तं फलं स्याद् दिनाद्यं
> तदब्दान्वितं भास्करादब्दपस्स्यात् ॥ १ ॥

स्पष्टार्थम् ।

अत्रोपपत्तिः :—एकस्मिन् रविवर्षे सावनाहाः प्राक् प्रतिपादिताः । तेभ्यः पञ्चषष्ट्यधिकं शतत्रयं ३६५ प्रोह्य शेषं दिनस्थाने पूर्णम्, पञ्चदश नाड्यः त्रिंशत् पलानि, तथा सार्द्धानि द्वाविंशतिविपलानि ०।१५।३०।२२।३० ; एतदष्टभिस्सवर्णितं जातम् $\begin{smallmatrix}\text{२}\\\text{४}\\\text{३}\end{smallmatrix}$ । अतोऽनुपातः । यद्यष्टभिर्वर्षैरेतावद् दिनाद्यं, तदा कल्पगतैः किम् ? इति फलं दिनाद्यम् । तदनष्टं संस्थाप्यम् । ततो गताब्दैर्युतं सदब्दपतिस्स्यात् इति यदुक्तं तदतः । यतः पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रये सप्तभिर्भक्ते एकोऽवशिष्यते । अत एकगुणाब्दसंख्या तस्मिन् दिनाद्ये निक्षिप्ता । तस्मिन् सप्ततष्टेऽर्काद्योऽब्दपतिः ; यतो यस्मिन् वारेऽब्दादिः, सोऽब्दपतिस्स्यादित्युपपन्नम् ।

दीपिका—एकस्मिन् सौरवर्षे रविदिनाद्यम् ३६५।१५।३०।२२।३०

एतदभीष्टसौरवर्षगुणितं—इष्टसौरवर्षसम्बन्धिदिनाद्यम्, ग. सौ. वं. (३६५।१५। ३०।२२।३०) एतत्सप्ततष्टं शेषम्=(१।१५।३०।२२।३०)

अतः दिनाद्यम्=ग. व. (१।१५।३०।२२।३०)

=ग. व.+ग. व. (१५'।३०"।२२"'×३०"")

$$= \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व. (२।४'।३)}}{८}$$

यतः १५।३०।२२।३०। × ८ = १२० २४० १७६ २४०

	४	३	४	०
२।	१२४	२४३	१८०	
	४	३	०	

$$\therefore \frac{\text{ग. व.} + \frac{२\ \text{ग. व.}}{८} + \frac{४\ \text{ग. व.}}{८} + \frac{३\ \text{ग. व.}}{८}}{७} = \text{अब्दपतिरित्युपपन्नम् ।}$$

शिखा— कल्पगत वर्षों को तीन जगह रखकर क्रमशः २, ४, ३ से गुणा करके उसमें ८ का भाग देने से योग करना चाहिए। इस दिनादि लब्धि को गत वर्ष में जोड़ देना चाहिए। ७ से भाग देकर रविवार से वार समझना चाहिए। यही इष्ट वर्ष में वर्ष पति होगा।

इदानीं प्रकारान्तरेणाऽऽह—

निजाशीति ८० भागेन युक्तं समार्द्धं
खषड् ६० भक्तमब्दाङ्घ्रियुग् वा दिनाद्यम् ।

अत्र वर्षाणामर्द्धं निजेनाऽशीतिभागेन युक्तं षष्ट्या हृतं वर्षचतुर्थांशेन युक्तं सद् दिनाद्यं वा ।

अत्रोपपत्तिः—पूर्वस्मिन् दिनाद्ये पञ्चदश घटिकाः, स एकस्य दिनस्य चतुर्थांशः। यानि त्रिंशत् पलानि ; तत् घटिकाया अर्द्धम् ०।३० । एतदनष्टमर्धघटिकाया अधस्तनेनाऽवयवेन ०।०।२२।३० । सवर्णितेन यावद् भ्रियते तावदशीतिर्लभते। अतो वर्षार्द्धं निजाशीतिभागेन युक्तं घटिका भवन्ति। ततूषष्ट्यंशो दिनानि। तानि पूर्वकथितवर्षचतुर्थांशेन युतानि दिनानि भवन्तीत्युपपन्नम् ।

दीपिका—पूर्वप्रदर्शितस्वरूपादेव दिनाद्यम् ग्राह्यम् ।

$$= \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{४} + (३०''।२२'''।३०'')$$

$$= \text{ग. व.} = \frac{\text{ग. व.}}{४} + \frac{\text{ग. व.}\ (८० + १)}{१६०}$$

$$= \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{४} + \frac{\text{ग. व.}\ ८०}{१६०} + \frac{\text{ग. व.}}{१६०}$$

$$= \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{४} + \frac{\text{ग. व.}}{२} + \frac{\text{ग. व.}}{८० \times २}$$

$$= \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{४} + \frac{\frac{\text{ग. व.}}{२} + \frac{\text{ग. व.}}{८० \times २}}{६०} \quad \text{इत्युपपन्नम्}$$

वर्ष के आधे में ८० का भाग देने से लब्धि को वर्ष के आधे में जोड़कर फिर इसमें ६० का भाग देकर गत वर्ष का चतुर्थांश भी इसी में जोड़ देने से प्रकारान्तर से दिनादि होते हैं।

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

गताब्दा विभक्ताः समुद्रैः ४ खसूर्य्यैः १२०
खखाङ्गाङ्कैः ६६०० वा फलैक्यं दिनाद्यम् ॥ २ ॥

अत्रोपपत्तिः :—एकं दिनं पञ्चदशघटिकाभिर्यावद् ह्रियते, तावच्चत्वारो लभ्यन्ते। यावदर्द्धघटिकया तावत् खसूर्य्याः १२०। यावदधस्तनेनाऽवयवेन ०।०।०।२२।३० तावत् खखाङ्गाङ्काः ९६००। एवं प्रत्यब्दम्। अतो गताब्दा एभिर्विभक्ताः फलैक्यं दिनाद्यं स्यादित्युपपन्नम्।

दीपिका—पूर्व स्वरूपादेव

$$\frac{\text{ग. व.}}{४}+\frac{\frac{\text{ग. व.}}{२}+\frac{\text{ग. व.}}{२\times ८०}}{६०}=\frac{\text{ग. व.}}{४}+\frac{\text{ग. व.}}{१२०}+\frac{\text{ग. व.}}{९६००}\ \text{उपपन्नम्}$$

शिखा—गत वर्षों में क्रमशः, ४, १२०, ९६०० का भाग देकर सब फलों का योग दिनादि होता है।

इदानीं क्षयाहानाह—

स्वपष्टयंशयुक्तानि वर्षाणि वर्षैः
खरामाहतैः संयुतान्यभ्रभूपैः १६० ।
विभक्तानि तान्यत्र लब्धं विशुद्धं
समाभ्यो गताभ्यो भवन्ति क्षयाहाः ॥ ३ ॥

अत्रोपपत्तिः ;—यदि कल्पवर्षैः कल्पक्षयाहा लभ्यन्ते, तदैकेन किम्? इति। फलमेकस्मिन् वर्षे क्षयाहाद्यम् ५।४८।२२।७।३०। अस्मात् पञ्च विशोध्य शेषेणाब्दा गुणिता अवमाद्यं भवति। तत्र लाघवार्थं शेषं रूपाद्विशोध्योर्वरितमभ्रभूपैः १६० सवर्णितं जातम् ३१।१ ततोऽनुपातः। यद्यभ्रभूपैर्वर्षैरेकत्रिंशद्दिनानि घटिकयाऽधिकानि लभ्यन्ते, तदा गताब्दैः किम्? इति। अत्र स्वषष्ट्यंशयुक्तानि वर्षाणि खरामाहतवर्षयुतानि एकत्रिंशता नाड्यधिकया गुणितानि भवन्ति। अत्राभ्रभूपैः १६० लब्धफलेन गताब्दा अतो वर्जिताः कृताः। यतः प्रत्यब्दं पष्ठेऽवमे यन्न पूर्यते, तद् गृहीत्वा कर्म कृतमिति सर्वमुपपन्नम्।

दीपिका—एकस्मिन्सौराब्दे क्षयाहाद्यम्=(५।४८।२२।७।३०) इदं गतवर्ष-गुणितं जातं गतवर्षसम्बन्धिक्षयाहाद्यम्=ग. व. (५।४८'।२२"।७"'।३०"") इति प्रतिवर्षं ५ ग. व. एतत्तुल्यं क्षयदिनं निश्चितमेव।

अतः ग. व. (४८।२२।७।३०) अस्य क्षयाहादिसंज्ञा कृताऽऽचार्येणेति।

$$= \text{ग. व}\left(१-(१-४८।२२।७।३०)\right) = \text{ग. व. }१-(११।३७।५२।३०)$$

$$= \text{ग. व.} - \text{ग. व. }(११।३७।५२।३०) = \text{ग. व.}\frac{(१८६१)\ \text{ग. व.}}{१६०}$$

यतः $(११।३७।५२।३०) \times १६० = १८६१$

$$\therefore \text{ग. व.} - \frac{\frac{\text{ग. व.}(१८००+६१)}{६०}}{१६०}$$

$$\text{ग. व.} - \frac{३०\ \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व. }(६०+१)}{६०}}{१६०}$$

$$= \text{ग. व.} - \frac{३०\ \text{ग. व.} + \text{ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{६०}}{१६०}$$

इत्युपपन्नम्।

शिखा—गत वर्षों में गत वर्ष का ६० वाँ भाग जोड़कर इसे ३०×गत वर्ष में जोड़ देना चाहिए। इस योग में १६० का भाग देकर जितना आवे उसे गत वर्ष में घटा देने से अवम या क्षय दिन सिद्ध होते हैं।

इदानीं प्रकारान्तरेण क्षयाहानाह—

दिनाद्यं त्रिनिघ्नं समाभ्राभ्रवेदां-४००
शकोनं समात्रिंशदंशेन युग् वा।

यत् प्रागानीतं दिनाद्यं, तत् त्रिगुणं वर्षचतुश्शतांशोनं वर्षत्रिंशदंशेन युतं वा क्षयाहा भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः—अत्रैकवर्षे दिनाद्यम् ०।१५।३०।२२।३०। तथाऽवमाद्यम् ०।४८।२२।७।३०। दिनाद्ये त्रिगुणितेऽवमाद्याद्विशोधिते जातं शेषम् ०।१।५१। इदं त्रिगुणे दिनाद्ये यदि क्षिप्यते, तदाऽवमाद्यं भवति। इदं शेषं खखार्कैः १२०० गुणितं जातं सप्तत्रिंशत् ३७। अब्दास्सप्तत्रिंशता गुण्या खखार्कैर्भक्तास्त्रिगुणे दिनाद्ये यदि क्षिप्यन्ते, तदा गतावमानि भवन्ति। अत्र गुणके रूपत्रयं प्रक्षिप्य सुखार्थं चत्वारिंशद् गुणकः कृतः। रूपत्रयमृणं गुणकश्च ४०।३। आभ्यामब्दा गुण्याः, खखार्कैर्भाज्याः। तत्र प्रथमगुणकश्चत्वारिंशताऽपवर्त्तितो जातः १। हरश्च ३०। द्वितीयो गुणकस्त्रिभिरपवर्त्तितः १। हरश्चतुश्शती ४००, अतो गताब्दाः पृथक् त्रिंशता चतुश्शत्या च हृताः, प्रथमफलं त्रिगुणदिनाद्ये धनं द्वितीयमृणम्; एवमवमाद्यं भवतीत्युपपन्नम्।

दीपिका—एकस्मिन्वर्षे दिनाद्यम् १५'।३०''।२२'''।३०''''
एकस्मिन्वर्षे क्षयाहाद्यम् ४८'।२२''।७'''।३०''''
त्रिगुणितदिनाद्यम् ४६'।३०''।७'''।३०''''

क्षयाहादिभ्यः शोधितं त्रिगुणितं दिनाद्यम् जातम्—

४८।२२।७।३०—४६।३१।७।३०=१'।५१"।०'।०"।

१'।५१।×२०=३७।० इदं विंशतिवर्षे।

$\therefore \frac{\text{ग. व. } (३७।०)}{२०}$ षष्टिभक्ते जातम् इदं षड्यात्मकम्

जातम् $\frac{\text{३७ ग. व.}}{१२००} = \frac{\text{ग. व. } (४० - ३)}{१२००} = \frac{\text{ग. व. ४०}}{१२००} - \frac{\text{ग. व. ३}}{१२००}$

$= \frac{\text{ग. व.}}{३०} - \frac{\text{ग. व.}}{४००}$

$\because$ क्षयाहादि—३ दिनादि$= \frac{\text{ग. व.}}{३०} - \frac{\text{ग. व.}}{४००}$ ।

$\therefore$ क्षयाहादि=३ दिनादि$+ \frac{\text{ग. व.}}{३०} - \frac{\text{ग. व.}}{४००}$ इत्युपपन्नम्।

शिखा—तीन गुणित दिनादि में गत वर्ष का ३० वां भाग जोड़कर फिर इसमें गत वर्ष का ४०० वां भाग घटा देने से भी क्षय दिन होते हैं।

अथ प्रकारान्तरेणाऽवमान्याह—

स्वषष्ट्यंशहीनाब्दखाङ्गेन्दु १६० भागः
स्वपञ्चांशहीनाब्दयुग् वा क्षयाहाः ॥ ४ ॥

अत्रोपपत्तिः—एकस्मिन् रविवर्षेऽवमशेषमष्टाचत्वारिंशद् घटिकाः। तत् पञ्चांशोनं दिनम्। अतः पञ्चांशोना अब्दाः कृताः। अथ तदधस्तना अवयवाः ०।०।२२।७।३०; एते खाङ्गेन्दुभिः १६० गुणिता जाताः ०।५९। एतत् षष्ट्यंशोनं रूपम्, अतष्षष्ट्यंशोनाब्दाः खाङ्गेन्दुभिर्भक्ताः पञ्चांशोनाब्दयुता अवमाद्यं भवतीत्युपपन्नम्।

दीपिका—एकस्मिन् सौराब्दे क्षयदिनाद्यम् =५।४८।२२।७।३०
अतो गतवर्षसम्बन्धिक्षयाहाद्यम् = ग. व. (५।४८।२२।७।३०) शेषावयवग्रहणेन—

$= \frac{\text{ग. व. ४८}}{६०} + \text{ग. व. } (२२।७।३०)$

$= \frac{\text{ग. व. ४}}{५} + \frac{\text{ग. व. ५९}}{१६० \times ६०}$ यतः $(२२।७।३०) \times १६० = ५९$

$= \dfrac{\text{ग. व.} - \frac{\text{ग. व.}}{५} + \text{ग. व.} - \frac{\text{ग. व.}}{६०}}{१६०}$

सर्वावयवग्रहणेन

$$\text{ग. व.} - \frac{\text{ग. व.}}{५} + \frac{\text{ग. व.} - \frac{\text{ग. व.}}{६०}}{१६०}$$

=क्षयदिनमित्युपपन्नम्

शिक्षा—वर्ष संख्या में वर्ष संख्या का पञ्चमांश घटाकर फिर गतवर्ष में ६० का भाग देकर उसे गतवर्षों में घटाकर फिर उसमें १६० का भाग देकर जो आवे उसे पूर्व शेष में जोड़ने से भी क्षयदिनादि होता है।

अथ गताधिमासान् शुद्धिश्चाह—

दिनादिक्षयाद्यादिदिग्घ्नाब्दयोगः
खरामैः ३० हृतः स्युः प्रयाताधिमासाः।
भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्राऽवशिष्टं
तदूनं सदूनाह्नाड्यादिकेन॥ ५॥

अनन्तरानीते ये दिनादिक्षयाद्याद्ये, तयोर्योगो दशघ्नैर्गताब्दैर्युतस्त्रिंशता हृतः, फलं गताधिमासा भवन्ति। यदत्राऽवशिष्टं, तच्छुद्धिसंज्ञम्। परं क्षयाद्याणां नाड्यादिकेन वर्जितं सत्।

अत्रोपपत्तिः—अत्रैकवर्षसावनानाम् ३६५।१५।३०।२२।३० अवमानाञ्च ५।४८।२२।७।३० योगतुल्या वर्षे चान्द्राहा भवन्ति ३७१।३।५२।३०। तथा वर्षेषष्टयधिकशतत्रयं ३६० सौराहाः। एभिरूनाश्चान्द्राहाः प्रत्यब्दमधिमास-सम्बन्धिन एकादश भवन्ति, घटीत्रयञ्च सार्द्धानि द्विपञ्चाशत् पलानि ११।३।५२।३०। एवमेकस्मिन् वर्षे दिनादिक्षयाद्यादयोगो दशाधिकोऽधिदिनानि भवन्ति। अधिदिनैस्त्रिंशद्भिरधिमासो भवति, इत्युपपन्नमधिमासानयनम्। अथाऽधिशेष-दिनान्यहर्गणानयने शोध्यत्वाच्छुद्धिसंज्ञानि। अत्राधिमासशेपतिथिभ्यो यदवम-घटिकाश्शोधितास्तत्कारणमग्रे कथयिष्यामः।

दीपिका—एकस्मिन्वर्षे सावनदिनाद्यम्=
३६५।१५।३०।२२।३०

एकस्मिन्वर्षे अवमाप्ति=
५।४८।२२।७।३०

साव. दि.+अवम=चां. दि०=३७१।३।५२।३०।०

एकस्मिन्सौरवर्षे सौरदिनानि=३६०

∵ चां. दि.− सौर दि.=अधिमा. दि.=११।३।५२।३०

अतः गतवर्षसम्बन्धि अ. मा. दि. ज्ञानार्थम्—

अ. मा. दि.=ग. व. (११।३।५२।३०)=१० ग. व.+ग. व. (१।३।५२।३०)

यतः दिनादि+क्षयादि=१५।३०।२२।३०+४८।२२।७।३०=१।३।५२।३०

∴ १० ग. व.+दिनादि.+क्षयादि.

$$\therefore \text{गताधिमासदिनाद्यम्} = \frac{\text{१० ग. व.} + \text{दिनादि.} + \text{क्षयाहा.}}{\text{३०}}$$

शिक्षा—दिनादि और क्षयाहादि के योग को १० गुणित गतवर्ष में जोड़कर उसमें ३० का भाग देना चाहिए। यही अधिमास संख्या होगी। शेष वर्षान्तकालीन तिथ्यात्मक अधिशेष होगा।

अथ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनमाह—

> **द्विधाऽब्दा द्विरामैः ३२ खरामैः ३० च भक्ताः**
> **फलैक्यं शिवघ्नाब्दयुक्तं विभक्तम्।**
> **खरामैस्तु ते वाधिमासाश्च शेषं**
> **भवेच्छुद्धिरूनाहनाड़ीविहीनम् ॥ ६ ॥**

स्पष्टार्थम्।

अत्रोपपत्तिः;—प्रत्यब्दं यान्यधिमासशेषसम्बन्धिदिनानि ११।३।५२।३०। एभिः किलाब्दा गुण्यास्त्रिंशता ३० हृता अधिमासा भवन्ति। तत्र लाघवार्थमेभ्य एकादश विशोध्य शेषम् ०।३।५२।३०। खाष्टवेदैः ४८० गुणितं जातमेकत्रिंशत् ३१। अनेनाऽब्दा गुण्याः किल खाष्टवेदैः ४८० भाज्याः। तत्राऽऽचार्येण रूपविभागाद्गुणकस्य खण्डद्वयं कृतम्। तत्राऽऽद्यं पञ्चदश द्वितीयं षोड़श। उभयत्र हरस्स एव। ततः खण्डाभ्यां हरं पृथगपवर्त्तिते जात आद्यो हरो द्वात्रिंशत् ३२ अन्यस्त्रिंशत् ३०। अतो द्वात्रिंशता त्रिंशता च पृथग्गताब्दा भक्ताः फलैक्यमेकादशगुणाब्दयुतं त्रिंशद्भक्तं फलमधिमासाः। शेषं प्राग्वच्छुद्धिरित्युपपन्नम्।

दीपिक—प्रत्यब्देऽधिमासशेषसम्बन्धीनि यानि दिनानि तानि गतवर्षगुणितानि।

गतवर्षसम्बन्ध्यधिशेषदि.=ग. व. (११।३।५२।३०)

=ग. व. ११+ग. व. (३।५२।३०)

ग. व. ११+ग. व. (३।५२।३०)×२

= ७।४५।०×४

=३१।०।०

$$\text{ग. व. ११} \times \frac{\text{ग. व. ३१}}{\text{६०} \times \text{८}} = \text{११ ग. व.} \frac{\text{ग. व. (१६+१५)}}{\text{४८०}} = \text{११ ग. व.} + \frac{\text{ग. व. १६}}{\text{४८०}}$$

$$+ \frac{\text{ग. व. १५}}{\text{४८०}} = \text{११ ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{\text{३०}} + \frac{\text{ग. व.}}{\text{३२}} \text{ ग. अ. मा.}$$

$$= \frac{\text{११ ग. व.} + \frac{\text{ग. व.}}{\text{३०}} + \frac{\text{ग. व.}}{\text{३२}}}{\text{३०}} \quad \text{इत्युपपन्नम्।}$$

शिक्षा—गत वर्षों में एक जगह ३० का और दूसरी जगह ३२ का भाग देकर जोड़ना चाहिए फिर इसे ११ गुणित गत वर्षों में जोड़ने से ३० का भाग देना चाहिए—प्रकारान्तर से अधिक मास होगा।

इदानीं दिनाद्येन विनाऽप्यब्दाधिपानयनमाह—

गताब्दाधिमासान्तरं द्विघ्नमाढ्यं क्षयाहर्गतैस्सप्तभक्तावशिष्टम्।
विशुद्धश्च शुद्धेस्स वर्षाधिपो वा भवेत् सप्तभक्तावशिष्टोऽर्कपूर्व्वः ॥ ७ ॥

स्पष्टम्।

अत्रोपपत्तिः;—रव्यब्दान्ते योऽहर्गणस्तत्र यो वारः, सोऽब्दाधिपः। प्रत्यब्दं सौरदिनसंख्या षष्ट्यधिकं शतत्रयम्। तस्मिन् सप्ततष्टे त्रयोऽवशिष्यन्ते। मासदिनेषु सप्ततष्टेषु द्वयमवशिष्यते। अतो गताब्दास्त्रिगुणा गताधिमासा द्विगुणास्तदैक्यं सप्ततष्टं यावद्भवति, तावदेव चैत्रादेः प्रागतीते तिथिगणे सप्ततष्टेऽवशेषं स्यात्। तत् किल शुद्धितिथिषु योज्यम्। ततः पूर्व्वलब्धाः क्षयाहाः शोध्याः। तथा प्रत्यब्दं पञ्च पञ्च। अतोऽब्दाः पञ्चगुणाश्शोध्याः। पूर्वं त्रिगुणाः क्षेप्याः। अतो द्विगुणाश्शोध्या एव। द्विगुणाः किलाधिमासाश्च योज्याः। अतो लाघवार्थमधिमासोना अब्दा द्विगुणास्तैर्लब्धाऽवमैश्च सप्ततष्टैः शुद्धिरूना सप्ततष्टा रव्यब्दान्ते वारो भवति। स एवाऽब्दप इत्युपपन्नम्।

दीपिका—ग० व० ३६०=सौ. दि.

३० ग. अ. मा.+अ. मा. शे.=ग. अ. मा. दि.

ग. व. ३६०+३० ग. अ. मा.+अ. मा. शे.=ग. चां. दि.

ग. व. ३६०+३० ग. अ. मा.+अ. मा. शे.—५ ग. व.—क्ष. दि—क्ष. घ. इतीदं सावनदिनस्वरूपं जातम्।

सप्त तष्टितम्—

३ ग. व.+२ ग. अ. मा.+अ. मा. शे.—५ ग. व.—क्ष. दि—क्ष. घ.

२ ग. अ. मा.—२ ग. व.+शु+क्ष. घ.

२ (ग. अ. मा.—ग. व.)+शु.+क्ष. घ.

$$\frac{\text{शु}-\frac{२(\text{ग. अ. मा.}-\text{ग. व.})}{७}+\text{क्ष. घ.}}{७}=\text{अब्दपतिः ॥}$$

शिक्षा—गत अधिमास और गत वर्ष को अन्तर के दो से गुणा कर ७ का भाग देकर इसे शुद्धि में घटाकर फिर ७ का भाग देन से भी वर्षपति हो जावेगा।

इदानीमवमैर्विनाप्यवमशेषघटिका आह—

यत् त्वधिमासकशेषकनाडीपूर्व्वमिदं रहितं विहितं सत्।
आद्यदिनाद्यघटीभिरथैवं स्युः क्षयशेषभवा घटिका वा॥ ८ ॥

यदधिमासशेषं तिथ्यात्मकं तस्याऽधो या घटिकास्ता आद्यदिनाद्यस्य घटीभिरूनास्सत्यः क्षयघटिका भवन्ति। अत्र "द्विघाब्दा द्विरामैस्स्वरामैश्च भक्ताः" इत्यादिना ये दिनाद्ये फले उत्पद्येते तन्निराकरणार्थमाद्यग्रहणम्।

अत्रोपपत्तिः सुगमा। यतो दिनावमघटिकैक्येनाऽधिमासशेषस्य घटिकास्ता दिनघटिकोना अवमघटिकाः। यदाऽवमघटिकोनास्तदा दिनघटिकास्स्युरिति भावः।

दीपिका— दिनादि = १५।३०।२२।३०
अवम घ. = ४८।२२।७।३०
अ. शे. ६३।५२।३०। ०

दि. आ. घ. + अवम घ. = अ. मा. शे. घ.

अ. व. घ. = अ. मा. शे. घ. — दिनाद्यम्

दिनाद्यम् = अ. मा. शे. घ. — अवम घ. इत्युपपन्नम्

शिखा—अधिमासशेष की घटिका में अवमशेष की घटिका घटाने से भी दिनादि होता है।

इदानीं रव्यब्दान्तग्रहानयनमाह—

कल्पजचक्रहतास्तु गताब्दाः
कल्पसमाविहृता भगणाद्याः।
स्युर्ध्रुवका दिनकृद्भगणान्ते
पातमृदूचचलोच्चखगानाम् ॥ ९ ॥

स्पष्टार्थमिदम्।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन—यदि कल्पवर्षैः कल्पभगणा लभ्यन्ते तदा गतैः किम्? इति। फलं रविमण्डलान्तिका ग्रहा भवन्ति। ये तत्र ग्रहाः, ते ध्रुवकाः कल्पिताः। यदत्र पातमृदूच्चग्रहणं, तत् तेषामतिमन्दगतित्वाद्वर्षगणेनैवानयनमुचितमिति सूचितम्।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—कल्प वर्ष में कल्पग्रह भगण मिलते हैं तो रविवर्षान्त में क्या? रवि वर्षान्त कालीन ग्रह होंगे। इन्हें रव्यब्दान्त कालीन ग्रह ध्रुवक कहना चाहिए।

इदानीं चन्द्रध्रुवकं प्रकारान्तरेणाऽऽह—

यत् तु दिनाद्यधिशेषमिनघ्नं १२ स्याद्ध्रुवकस्त्वथवा स लवाद्यः।
कैरविणीवनिताजनभर्तुः पीतचकोरमरीचिचयस्य ॥ १० ॥

यदधिमासशेषं तिथ्यात्मकं, तद्रविगुणं भागात्मको विधुर्भवति।

अत्रोपपत्तिस्सुगमा। यतो द्वादशगुणास्तिथयो रवीन्द्वोरन्तरभागास्स्युः। तत्र रविः १२ पूर्णः। अवस्ताद्दगेव शशीत्युपपन्नम्।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—दिनादि अधिशेष को १२ से गुणने पर प्रकारान्तर से चन्द्रमा का अंशादि ध्रुवक होगा। क्योंकि वर्षान्त और चंद्र अमान्त के बीच में तिथ्यात्मक अधिशेष होता है।

इदानीं कलिगतादाह—

कलेर्गताब्दैरथ वा दिनाद्यं पूर्वं यदुक्तं खलु तत् प्रसाध्यम् ।
अब्दाधिपस्तत्र सितादिकस्स्यात् ध्रुवाश्च युक्ताः कलिवक्त्रखेटैः ॥ ११ ॥

स्पष्टम् ।

दीपिका—कल्पगतस्थाने कलिगतग्रहणेन यथोक्तं कार्यमित्यर्थः । कलिगतसाधितध्रुवाः कल्पादिस्थग्रहध्रुवैः संयुक्तास्सन्तो राश्यादिध्रुवाः पूर्वागतसमा भवन्तीत्यर्थः ।

शिखा—कलिगत से साधित ध्रुवकों को कल्पादि के ग्रह ध्रुवों में जोड़ने से राश्यादिक ध्रुवक होते हैं । कलियुगादि से आरम्भ करने पर वर्ष पति का ज्ञान शुक्रवार से आरम्भ कर के समझना चाहिए ।

इदानीमहर्गणार्थं क्षेपदिनान्याह—

स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः क्षेपदिनानि दिवागणसिद्ध्यै ।

पूर्वमानीता ये क्षयाहास्तेषामधो यन्नाडिकाद्यं तत् स्वीयविंशांशयुतं सद् दिनाद्यं कल्प्यम् । या घटिकास्तानि दिनानि, या विघटिकास्ता घटिकास्तासामप्यधो ये षष्ट्यंशास्तानि पानीयपलानि कल्प्यानीति । किमर्थम् ? दिवागणसिद्ध्यै—अहर्गणसिद्ध्यर्थम् ।

अत्रोपपत्तिः—वक्ष्यमाणेऽहर्गणानयने यदवमानयनं तत्र चतुष्षष्टिर्भागहारः कृतः; यतश्चान्द्राहाणां चतुष्षष्ट्या एकमवमं पतति । अतो रव्यब्दान्ते यदवमशेषं तच्छुद्ध्यूनासु तिथिषु स्वीयकराभ्रतुरङ्ग ७०२ लवयुतासु सहराच्छेदं कृत्वा क्षेप्यम् । ततश्चतुष्षष्ट्या भागे गृहीते लब्धमवमानीत्युचितम् । तत्र रव्यब्दान्ते यदवमशेषं घटिकात्मकं पूर्वं गृहीतमस्ति, तत्तु षष्टिच्छेदं तच्चतुष्षष्टिच्छेदं कार्य्यम् । अतस्ता घटिकाश्चतुष्षष्ट्या किल गुण्याः षष्ट्या भाज्याः ; एवं चतुष्षष्टिच्छेदमवमशेषं भवति । अथ चतुष्षष्टिस्थाने त्रिषष्टिरेव कृता, किम् इति ? तत्रोच्यते; पूर्वं या अधिमासशेषतिथय आगतास्ता एव शुद्धित्वेन ग्रहीतुं युज्यन्ते ; यतस्ताभिरूनाश्चैत्राद्यास्तिथयोऽब्दान्तादग्रतो गृहीता भवन्ति । अथ च शुद्धितिथयः कार्य्यान्तरवशादवमघटीभिरूनाश्शुद्धित्वेन परिकल्पिताः । अवमघटिकोनया शुद्ध्या यावच्चैत्राद्यास्तिथय ऊनीकृतास्तावच्छेपतिथिष्ववमशेषघटिका अधिका जाताः । यतश्शोध्यमानमृणं धनं स्यादिति । यत एकगुणा युक्ताः, अतस्त्रिषष्टिगुणा योज्याः । तत्राऽवमघटिकानां त्रिषष्टिर्गुणकारः, षष्टिर्भागहारः । तत्र गुणकभागहारौ त्रिभिरपवर्त्तितौ, गुणकस्थान एकविंशतिः २१ भागहारस्थाने विंशतिः २० । फलं दिनानि । अत्र हराद्गुणको विंशांशाधिकोऽतः "स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः क्षेपदिनानि" इत्युपपन्नम् ।

दीपिका—

यतः $\frac{\text{क्षय घ.} \times ६३}{६०} = \frac{\text{क्षय. घ.} \times २१}{२०} = \text{क्षेपः}$ ।

$= \frac{\text{क्षयघटी } 20}{20} + \frac{\text{क्षयघटी}}{20} = \text{क्षय घ.} + \frac{\text{क्षय घ.}}{20}$ उपपन्नम् ।

शिखा—अवम घटिकाओं को अपने बीसवें भाग से युक्त करने पर जो आता है वे लघु अहर्गण के साधनोपयुक्त क्षेप दिन होते हैं ।

इदानीमहर्गणानयनमाह—

चैत्रसितादिगतस्तिथिसङ्घः
शोधितशुद्धिरधस्तु समेतः ॥ १२ ॥
स्वीयकराभ्रतुरङ्ग ७०२ लवेन
क्षेपयुतः कृतषट्कविभक्तः ।
लब्धदिनक्षयवर्जितशेषो
रव्युदये द्युगणोऽब्दपतेस्स्यात् ॥ १३ ॥

चैत्रादेर्गततिथिसङ्घयश्शुद्धिरहितस्त्रिपष्ठः कार्य्यः । अन्तिमो द्विखतुरङ्गैः ७०२ भाज्यः । फलं मध्यस्थे क्षेप्यम् । ततोऽनन्तरानीतानि क्षेपदिनानि तत्र क्षिप्त्वा स राशिश्चतुष्षष्ट्या ६४ भाज्यः । फलमवमानि । शेषमवमशेषम् । चन्द्रानयनार्थं तत् पृथगनष्टं स्थाप्यम् । अवमैरूनः प्रथमो राशिरहर्गणस्स्यात् । स चाऽब्दपत्यादिः । यस्मिन् वारे यावतीषु घटिकासु रव्यब्दान्तो जातः, तस्मात् कालात् तदनन्तरार्कोदयं यावद् या घटिकास्ता एव अहर्गणावयवीभूताः । यतस्तासु गतास्वब्दान्तो जातोऽभूत् । तदग्रतो दिनतुल्या वारा इति बुद्धिमता गणनीयम् ।

अत्रोपपत्तिः;—अत्र चैत्रादिगततिथयश्शुद्ध्यूना अतः कृताः; यतोऽधिमास-शेषतिथिभिस्सावयवाभिरूनीकृताः सत्यो रव्यब्दान्तादग्रतो गृहीता भवन्ति । रव्यब्दान्तादूर्द्ध्वमिष्टदिनोदयं यावद् द्युगणः साध्यः । अतोऽब्दान्ताऽनन्तरार्कोदया-ऽन्तरघटीतुल्येनाहर्गणाधोऽवयवेन भवितव्यम् । अब्दान्तस्तु दिनाद्यस्य घटिकान्ते । अतश्शुद्धितिथिषु सावयवास्ववमघटिका विशोध्य दिनघटिका एव शेषीकृताः; ताभिस्तिथिभ्यः शोधिताभिरहर्गणावयवघटिका यथोक्ता भवन्ति । एवं कृते-ऽवमानयनं किञ्चित् सान्तरं स्यात् । तत् क्षेपदिनानयनेन निरन्तरीकृतम् । अवमानयनेऽनुपातः । यदि कल्पतिथिभिः कल्पावमानि लभ्यन्ते, तदाऽऽभिः किम् ? इति । एमवमानि गुणश्चन्द्रदिनानि हारः । ततः सञ्चारो यदि चन्द्रदिनहारेणाऽवमानि गुणास्तदा चतुष्षष्ट्या किम् ? इति । चतुष्षष्ट्या गुणितानामवमानां चन्द्रदिनहृतानां लब्धं रूपम् । शेषेण शेषमपवर्त्तितं जातं रूपम् । हारश्चापवर्त्तितो जातो द्विखशैलमितः $\frac{1}{702}$ । अयं गततिथीनां गुण-श्चतुष्षष्टिर्हरोऽतः समेतः "स्वीयकराभ्रतुरङ्गलवेन" इति सर्वं निरवद्यम् ।

दीपिका—

$$\text{व. ऊ. चा.} = \text{चै. चा.} - \text{अ. मा. शे.}$$
$$= \text{चै. चां.} - \text{अ. मा. शे.} - \text{क्ष. घ.} + \text{क्ष. घ.}$$
$$= \text{चै. चां.} - (\text{अ. मा. शे.} - \text{क्ष. घ.}) - \text{क्ष. घ.}$$
$$= \text{चै. चां.} - \text{शु.} - \text{क्ष. घ.}$$
$$= \text{इ. चा.} - \text{क्ष. घ.}$$

$$\text{इ. सा.} = \text{इ. चां.} - \text{क्ष. घ.} - \frac{\text{इ. चां.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right)}{६४} + \text{क्ष. घ.}$$

$$= \frac{\text{इ. चां.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right)\ ६४\ \text{क्ष. घ.}}{६४}$$

$$= \frac{\text{इ. चां.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right) + ६३\ \text{क्ष. घ.}}{६३}$$

$$= \text{इ. चां.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right) + \frac{६३\ \text{क्ष. घ.}}{६४}$$

$$= \frac{\text{इ. चां.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right) + \frac{६३\ \text{क्ष. घ.}}{६४}}{६४}$$

$$\text{इ. चां.}\frac{\left(१+\frac{१}{७०२}\right) + \text{क्षेप. दि.}}{६४}$$

$$\text{इ. सा.} = \text{इ. चां} - \frac{\text{इ. चां.} + \frac{\text{इ. चां.}}{७०२} + \text{क्षे. दि.}}{६४}$$

$$\frac{\text{क. अव.} \times \text{इ. चां.}}{\text{क. चां.}}$$
$$= \frac{६४ \times \text{क. अव.} \times \text{इ. चां.}}{६४ \times \text{क. चां.}}$$
$$= \frac{६४ \times \text{क. अव.} \times \text{इ. चां.}}{\frac{\text{क. चा.}}{६४}}$$
$$= \frac{\text{इ. चां.}\left(१+\frac{\text{शे}}{\text{क. चां}}\right)}{६४}$$
$$= \frac{\text{क्ष. दि.} = \frac{\text{इ. चा.}\left(१+\frac{१}{७०२}\right)}{}}{६४}$$
$$\frac{६३\ \text{क्ष. घ.}}{६०} = \frac{२१\ \text{क्ष. घ.}}{२०}$$
$$= \text{क्ष. घ.} + \frac{\text{क्ष. घ.}}{२०} = \text{क्षे. दि.}$$

इत्युपपन्नम् ॥

शिखा—श्लोक १२–१३

चैत्र शुक्ल के आदि से इष्ट समय तक जितनी तिथियाँ गत हो गई हैं उनमें शुद्धि को कम करना और इसमें इसी का ७०२ भाग जोड़ते हुये उक्त क्षेप दिन भी जोड़ने चाहिए। इसमें जो फल आवे उसमें ६४ का भाग देने से प्राप्त लब्धि दिन क्षय का प्रमाण होता है, इसे चैत्रादि गत तिथि संख्या में घटा देने से शेष वर्षाधिपति के आरम्भ से अहर्गण होता है। यह लाघव प्रणाली का अहर्गण है इसीलिए आचार्य ने इसका नाम लघु अहर्गण कहा है।

इदानीं विशेषमाह—

> **यावत् तिथिभ्योऽभ्यधिकाऽत्र शुद्धिः**
> **प्राक् चैत्रतस्तावदहर्गणस्स्यात् ।**
> **प्राक् शुद्धिपूर्वेण तथैव खेटाः**
> **प्राग्वर्षजातैर्ध्रुवकैस्समेताः ॥१४॥**

अत्र यावच्चैत्रादितिथिभ्यश्शुद्धिर्न शुध्यति, तावत् पाश्चात्त्यचैत्रादेरारभ्य तिथीर्गणयित्वा पूर्ववर्षभवैश्शुद्ध्यब्दपक्षेपदिनैरहर्गणस्साध्यः। तस्मादागता ग्रहाः पूर्ववर्षध्रुवकैश्च युताः कार्य्याः। यतो रव्यब्दादेरहर्गणस्यान्यरव्यब्दान्तं यावदुपचय इयमेवाऽत्र वासना।

दीपिका—यतः—

इ. चां.=चै. चां.—शुद्धिः। अत्र यदि चै. चां. <शु. एवं तदैव स्याद्यदि चै. शुक्ल-प्रतिपत्तथा वर्षान्तियोर्मध्ये इष्टदिनं भवेत्। अतोऽत्र प्राक्चैत्रत इष्टदिनं यावदिष्टतिथिं गृहीत्वा प्राक् वर्षीयशुद्ध्याहर्गणः साध्य इत्याचार्याशयः। परन्त्वत्र गौरवं स्यादहर्गणस्याधिक्यात्। अतोऽत्र यदि चै. चांशेषसम्बन्धि यो हि अहर्गणः स ऋणात्मक इति प्रकल्प्य कलिमुख ध्रु+व. अं. ध्रु.—लब्धहर्गणोद्भवग्रहः, एव स्पष्टग्रहो भविष्यतीति ज्ञेयम्।

अत्र शु—चै. चां.=शे ति. इति ज्ञेयम्।

शिखा—यहाँ पर यदि तिथि से शुद्धि अधिक हुई तो तिथि में शुद्धि नहीं घटेगी तब क्या करना उचित है? उत्तर में लिखा है कि पूर्व वर्ष की शुद्धि अब्दपति क्षेपदिन इत्यादि को लेकर अहर्गण का साधन करना चाहिए। ऐसी स्थिति में ग्रहों के पूर्व वर्ष का ही ध्रुवक लेना चाहिये।

इदानीं रव्यानयनमाह—

दिनगणो निजषष्टिलवोनितो
भवति तिग्मरुचिः स लवादिकः।
गुणगुणाद् द्युगणादथ भाजिताद्
यमयमैः २२ कलिकादिफलान्वितः॥ १९॥

अत्रोपपत्तिः ;—अत्र बालावबोधार्थं रूपमहर्गणं कृत्वा ग्रहाणां दिनगतयः साधिताः।

र	चं	मं	बु	गु	शु	श	उ	पा
०	१३	०	४	०	१	०	०	०
५९	१०	३१	५	४	३६	२	६	३
८	३४	२६	३२	५९	७	०	४०	१०
१०	५३	२८	१८	९	४४	२२	५३	४८
२१	०	७	२८	९	३५	५१	५६	२०

दिनगणः स्वषष्ट्यंशोनो भागा इति प्रत्यहमेकोनषष्टिः कला गृहीताः। शेषावयवेन सत्रिभागैः सप्तभिर्दिनैरेका कला भवति। अतो गुणगुणाद् द्युगणाद् यमयमैर्भाजितात् इत्युपपन्नम्।

दीपिका—म. सू.=इ. कु. (५९'।८"।१०'''।२१'''') $= \frac{\text{५९ इ. कु.}}{\text{६०}}$ + इ. कु. (८।१०।२१)

$= \frac{\text{इ. कु. (६०—१)}}{\text{६०}} + \frac{\text{इ. कु. १८०}}{\text{२२} \times \text{६०}}$ यतः (८।१०।२१) × २२ = १८०

$= \text{इ.कु.} - \frac{\text{इ.कु.}}{६०} + \frac{३\ \text{इ.कु.}}{२२}$ इत्युपपन्नम् ।

शिखा—अहर्गण का साठवाँ भाग अहर्गण में ही कम करने से जितना होगा, उसमें भी तीन गुणित अहर्गण का २२ वाँ भाग जोड़ देने से मध्यम रवि हो जाता है ।

अथ चन्द्रानयनमाह —

रविगुणैस्तिथिभिः पृथगुष्णगुः
लवगतस्सहितस्स हिमद्युतिः ।
स्वनगभागयुतेन दशाहत-
क्षयदिनोर्वरितेन कलान्वितः ॥ १६ ॥

स रविः पृथग् रविगुणतिथितुल्यैर्भागैः सहितो हिमद्युतिर्भवतीति प्रसिद्धा वासना। परमेवं तिथ्यन्ते। अथ चौदयिकः कार्य्यः। तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषम्। तत् सावनम्। तस्य चान्द्रीकरणायाऽनुपातः। यदि त्रिषष्ट्या सावनैश्चतुष्षष्टितिथयः, तदाऽवमशेषान्तः पातिभिस्सावनावयवैः किम्? इति। पूर्वमवमशेषस्य चतुष्षष्टिश्छेदः। इदानीं गुणस्तुल्यत्वात् तयोर्नाशे कृते त्रिषष्टिरेव हरः। फलं तिथ्यात्मकम्। तद् द्वादशगुणं किल भागः। पुनः षष्टिगुणं कलाः। एवं द्विसप्ततिर्दशगुणाऽवमशेषस्य गुणस्त्रिषष्टिर्हरः। हरगुणौ नवभिरपवर्त्तितौ। हरस्थाने जाताः सप्त ७ गुणस्थानेऽष्टौ दशगुणाः ८०। यो राशिरष्टभिर्गुणितः सप्तभिर्ह्रियते स स्वसप्तमांशेनाधिकः कृतो भवति। अत उक्तं—"स्वनगभागयुतेन दशाहत-क्षयदिनोर्वरितेन कलान्वितः" इति। एवं ताभिः कलाभिश्च युत औदयिकः शशी स्यादित्युपपन्नम्।

दीपिका—ति. अं. च. = सू. + १२ × ति.। परमेवं तिथ्यन्ते भवति। अथ चन्द्रस्त्वौदयिको ग्राह्यः। तिथ्यन्तार्कोदययोर्मध्येऽवमशेषम्। तत्तु सावनम्। तस्य चान्द्रकरणायानुपातः—

$$\text{अ.व.शे.सं.चां.} = \frac{६४ \times \text{अ.व.शे.}}{६३ \times ६४} = \frac{\text{अ.व.शे.}}{६३}$$

$$\text{ति.अं.का.चं.} + \frac{१२ \times \text{अ.व.शे.}}{६३}$$

$$\text{ति.अं.का.चं.} + \frac{६० \times १२ \times \text{अ.व.शे.}}{६३} = \text{ति.अं.का.चं.} + \frac{७२ \times १० \times \text{अ.व.शे.}}{६३}$$

$$\text{ति.अं.का.चं.} + \frac{८ \times १० \times \text{अ.व.शे.}}{७} = \text{ति.अं.का.चं.} + १० \left(\frac{८ \times \text{अ.व.शे.}}{७}\right)$$

$$= \text{ति.अं.का.चं.} + १० \left(\frac{७ \times १ \times \text{अ.व.शे.}}{७}\right) = \text{ति.अं.का.चं.} + १० \left(\text{अ.व.शे.} \times \frac{\text{अ.व.शे.}}{७}\right)$$

शिखा--गततिथि संख्या को १२ से गुणा कर अंशादि रवि में जोड़ दे। इसमें अपना सप्तमांश सहित और १० गुणित कलादि अवमशेष जोड़ने से स्पष्ट चन्द्रमा होता है।

इदानीं भौमानयनमाह —

> दिनगणार्द्धमघो गुणसंगुणम्
> द्युगणसप्तदशांशविवर्जितम् ।
> लवकलादिफलद्वयसंयुतः
> क्षितिसुतध्रुवकः क्षितिजो भवेत् ॥ १७ ॥

स्पष्टार्थमिदम् ।

अत्रोपपत्तिः ;—दिनगणार्द्धं भागा इति प्रत्यहं त्रिंशत् कला गृहीताः $\frac{०}{३०}$। तत् पृथक् त्रिगुणं जातम् $\frac{१}{३०}$। अतः कलाः पूर्वकलामिश्रीकृता जाताः $\frac{३१}{३०}$। एतत् कुजगतेरधिकम्, अतोऽतः कुजगतिं विशोध्य शेषम्—०।३।३१।५३। अनेन सप्तदशगुणेनैका कला भवति। अत उक्तं—"द्युगणसप्तदशांशविवर्जितम्" इति। पूर्वफलेन भागादिनाऽनेन च कलादिना भौमध्रुवको युक्तः कुजो भवति ; यतोऽयमहर्गणोऽर्काब्दान्तादूर्ध्वमतस्तदुत्थं फलं रविमण्डलान्तिके योज्यमित्युपपन्नम् ।

दीपिका—म. भौ.=व. अं. ध्रु.{इ. कु. (३१'।२६"।२८"'।७""।)}

व. अंध्रु.+३० इ. कु.+इ. कु. १ (२६"।२८"'।७""।)

$$=\text{व. अंध्रु.}+\frac{\text{इ. कु.}}{२}+\text{इ. कु.}\{१'।३०"-(३।३१।५३)\}$$

$$=\text{व. अंध्रु.}+\frac{\text{इ. कु.}}{२}+\frac{\text{३ इ. कु.}}{२}=\frac{\text{इ. कु.}}{१७}।\quad \text{यतः }(३।३१।५३)\times १७=१$$

इत्युपपन्नम् ।

शिखा—अहर्गण के आधे में (अंशात्मक) त्रिगुणित अहर्गण के आधे में अहर्गण का सत्रहवाँ भाग (कलात्मक) कम कर वर्षान्त कालीन ध्रुवक में जोड़ देने से मध्यम मंगल हो जाता है।

इदानीं बुधचलानयनमाह —

> दिनगणः कृतसंगुणितः पृथग्
> गुणगुणः खगुणेन्दुभिरुद्धृतः ।
> फलयुतः खलु तेन लवादिना
> बुधचलं भवति ध्रुवकोऽन्वितः ॥ १८ ॥

अत्रोपपत्तिः ;—अहर्गणश्चतुर्गुणो भागा भवन्तीति प्रसिद्धम् । अथ ज्ञचलस्य कल्पभगणानां भागान् कृत्वा तेभ्यश्चतुर्गुणान् कहान् विशोध्य शेषस्यास्य १४५६५३८३४२४० द्वादशांशेनानेन १२१३७८१९५२० शेषं कहाश्चापवर्त्तिता जाताश्शेषस्थाने द्वादश १२ कहस्थाने खगुणेन्दवः १३०। अतः पृथगहर्गणो द्वादशभिर्गुण्यः। पूर्वं चात्र चतुर्गुणोऽहर्गण आसीत्। स एव त्रिगुणो द्वादशगुणो भवतीति गुणगुण

उक्तः। पृथक् स्थितो यश्चतुर्गुणितस्स एव त्रिगुणीकृतस्तेन द्वादशगुणितो जातः। खगुणेन्दुभिर्भक्तः फलभागैः पृथक् स्थितश्चतुर्गुणोऽहर्गणो युतः कार्य्यः। एवं ते भागाः प्राग्वत् ध्रुवके क्षेप्या इत्युपपन्नम्।

दीपिका—व. अं. बु. उ. ध्रु.+इ. कु. (४।५।३२।१८।२८)

=व. अं. ध्रु.+४ इ. कु.+इ. कु. (५।३२।१८।२८)

$$=\text{व. अं. ध्रु.} + \text{४इ. कु.} + \frac{\text{३इ. कु.} \times \text{४}}{\text{१३०}}$$ । यतः—

५।३२।१८।२८ × १३० = ३ = म. बुशीउ। इत्युपपन्नम् ॥

शिखा—१२ गुणित अहर्गण में १३० का भाग देकर उसे ४ से गुणित अहर्गण में जोड़ने के बाद वर्षान्तकालीन बुधध्रुवक (शीघ्रोच्च) में जोड़ने से बुधशीघ्रोच्च होता है।

इदानीं गुरोरानयनमाह—

द्युमणिभिः कुनगैर्द्युगणो हृतो
लवकलाः स्वमृणं ध्रुवके गुरुः।

अत्रोपपत्तिः ;—किञ्चिन्न्यूनाः पञ्च कला गुरोर्गतिरिति द्वादशभिर्दिनैरेको भागः। यन्न्यूनं तेन रूपे हृत एकसप्ततिः लभ्यते। अत एकसप्तत्या दिनैरेका कलोनेत्युपपन्नम्।

दीपिका—म. गु.=इ. कु. (०।४।५९।१।१९)

$$=\text{इ. कु.} \left\{ \text{५} - (\text{०।५०।५१}) \right\} = \text{५ इ. कु.} - \text{इ. कु.} (\text{०।५०।५१})$$

$$=\text{५ इ. कु.} - \frac{\text{इ. कु.}}{\text{७१}} = \frac{\text{५ इ. कु.}}{\text{६०}} - \frac{\text{इ. कु.}}{\text{७१}} = \frac{\text{इ. कु.}}{\text{१२}} + \frac{\text{इ. कु.}}{\text{७१}}$$ ।

यतः ०।५०।५१ × ७१ = १ इत्युपपन्नम्।

शिखा—अहर्गण में १२ का भाग देकर अंशादि फल को गुरु की ध्रुवा में जोड़ देना चाहिये, फिर अहर्गण में ७१ का भाग देकर कलादिफल घटाने से गुरु का मध्यम हो जावेगा।

अथ शुक्रचलानयनमाह।—

ऋतुभिरक्षदिनैर्दशसङ्गुणात्
फललवाः स्वमृणं ध्रुवके सितः ॥ १९ ॥

अत्रोपपत्तिः ;—अत्र सुखार्थमहर्गणं कृत्वा भागहारद्वयेन फले साधिते। अत्र दशभ्यः षड्भिर्भागे हृते लब्धमेको भागश्चत्वारिंशत् कलाः १। ४०। इदं दिनगतेरधिकं जातम्। अस्माद् गतिं विशोध्य शेषम् ०। ३। ५२। १५। २५। अनेन दशभ्यो भागे हृते लब्धाः पञ्चपञ्चेन्दवः १५५। अतोऽहर्गणाद्दशघ्नात् पृथक् षड्भिः पञ्चतिथिभिश्च हृताल्लब्धे भागाद्ये धनर्णरूपे फले इत्युपपन्नम्।

दीपिका—म. शु.=इ. कु. (१।३६'।७"।४४"'।३५"")=इ. कु.+इ. कु. (३६।७।४४।३५)

$= इ. कु. + इ. कु. । ४० - (३।५२।१५।२५) = इ. कु. + ४० इ. कु. - इ. कु. (३।५२।१५।२५) ।$

$= इ. कु. + \frac{४० इ. कु.}{६०} - \frac{१० इ. कु.}{१५५} = शु. ध्रु. + \frac{१० इ. कु.}{६} - \frac{१० इ. कु.}{१५५}$

= म. शु. शी. के.

यतः ३।५२।१५।२५ × १५५ = १० (स्वल्पान्तरात्)—इत्युपपन्नम् ।

शिखा—१० गुणित अहर्गण में ६ और १५५ का भाग देकर दोनों का अन्तर वर्षान्त कालिक शुक्र ध्रुवा में जोड़ने से शुक्र का शीघ्रोच्च होगा ।

इदानीं शनेरानयनमाह—

द्विघ्नो दिनौघः पृथगत्तभक्तो
लिप्ता विलिप्ता ध्रुवके स्वमार्किः ।

अत्रोपपत्तिः ;—गतिः कलाद्वयम् । अधोऽवयवात् पञ्चभिर्दिनैर्द्वे विकले च भवत इत्युपपन्नं "द्विघ्नो दिनौघः" इत्यादि ।

दीपिका—म. श. = इ. कु. (२।०।२२।५१) = २ इ. कु. + इ. कु. (०।२२।५१)

$= २ इ. कु. + \frac{२ इ. कु.}{५}$ । यतः—०।२२।५१ × ५ = २ इत्युपपन्नम् ।

शिखा—अहर्गण को २ से गुणा कर ५ से भाग देकर लब्धि को २ गुणित अहर्गण में जोड़कर जो अङ्क मिले उसे वर्षान्तकालिक शनिध्रुवा में जोड़ने से मध्यम शनि होता है ।

इदानीं विधूच्चानयनमाह—

दिग्भिर्गजेभैश्च हृतो दिनौघः
क्षेप्यो ध्रुवांशेषु भवेद्विधूच्चम् ॥ २० ॥

अत्रोपपत्तिः ;—कलाषट्कं गतिरिति दशभिर्दिनैर्भागः । भागादिगतेः कलाषट्कं विशोध्य शेषेणानेन ०।०।४०।५३।५६ रूपे हृते लब्धा गजेभाः ८८ । अतो "दिग्भिर्गजेभैः" इत्याद्युपपन्नम् ।

दीपिका—म. च. उ. = इ. कु. (६।४०।५३।५६) = ६ इ. कु. + इ. कु. (४०।५३।५६)

$= \frac{६ इ. कु.}{६०} + \frac{इ. कु.}{८८} = \frac{इ. कु.}{१०} + \frac{इ. कु.}{८८}$

यतः—(४०।५३।५६) ८८ = १ इत्युपपन्नम् ।

शिखा—अहर्गण में १० और ८८ का भाग देकर दोनों फलों को वर्षान्त कालिक चन्द्रध्रुवा में जोड़ने से चन्द्रोच्च होता है ।

अथ पातानयनमाह—

ताडितः खदहनैर्दिनसङ्घः षट्कषट्कशरहृत् फलमंशाः ।
स्वं ध्रुवे कुमुदिनीपतिपातो राहुमाहुरिह केऽपि तमेव ॥२१॥

अत्रोपपत्तिः ;—कल्पराहुभगणानां राशिभिः कुदिनेषु भक्तेषु लब्धं षट्क-षट्कशराः ५६६। एभिर्द्युगणे भक्ते राश्यादि फलम्। तद्भागादिकं कर्त्तुं -'ताडितः खदहनैः" रित्युपपन्नम् ।

दीपिका—चं. पा. $=$ इ. कु. (३।१०।४८।२०) $= \frac{\text{३० इ. कु.}}{\text{५६६}} =$ चं. पा.

यतः—३।१०।४८।२० $\times$ ५६६ $=$ ३०

इत्युपपन्नम् ।

शिखा—अहर्गण को ३० से गुणा कर ५६६ से भाग देने से जो फल मिले उसे पात ध्रुवा में जोड़ने से राहु होता है ।

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह—

लक्षाहताद्दिनगणाच्छशिषट्कशक्र-
दिग्भिः १०१४६१ नगाष्टनगभूतिथिभिः क्रमेण १५१६७८७।
देवाष्टखाङ्कशशिभिः १६०८३३ च रसाग्निवेद-
सिद्धैः २४४३६ खखाब्धिदहनाभ्रयमेन्दुभिश्च १२०३४०० ॥२२॥
भूपाब्धिलोचनरसैः ६२४१६ खखखाभ्रनन्द-
नन्दाश्विभिः २९९०००० गगनखाभ्रगजाङ्कनागैः ८९८०००।
खाभ्राष्टपञ्चजधृतिप्रमितैः १८८६८०० च भक्ताद्
भागादिकानि हि फलानि रवेः सकाशात् ॥ २३ ॥
विधोः फलं खाश्विगुणं विधेयं ग्रहध्रुवाः स्वस्वफलैः समेताः ।
ते वा भवन्ति द्युचराः क्रमेण भागादिकः स्यात् फलमेव भानुः ॥२४॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपपत्तिः ;—यदि कल्पकुदिनैः कल्पभगणभागा लभ्यन्ते, तदाहर्गणेन किम्? इति। एवं त्रैराशिके कृते पश्चात् सञ्चारः। यदि भगणभागमिते गुणके कुदिनानि हारस्तदा लक्षमिते किम्? इति। एवं लक्षगुणकुदिनेभ्यः पृथग् भगणभागहृतेभ्यो यानि फलानि, तानि लक्षाहतस्य दिनगणस्य भागहारा भवन्ति। विधोस्तु लक्षेण विंशत्या च गुणितेभ्यः कुदिनेभ्यो हारः साध्यते; गतेर्बहुत्वादित्युपपन्नम् ।

दीपिका—भागादिरविः $= \frac{\text{क.र.भ.भा.} \times \text{इ.कु.}}{\text{क. कु.}} = \frac{\text{लक्ष} \times \text{इ कु}}{\text{हा}}$

$$= \frac{\dfrac{\text{क. र. भ. भा.} \times \text{लक्ष}}{\text{क. र. भा.}}}{\dfrac{\text{क कु} \times \text{लक्ष}}{\text{क. र. भा.}}} = \frac{\text{लक्ष} \times \text{इ कु}}{\text{रहा}} \text{ एवमेव } \frac{\text{लक्ष} \times \text{इ कु}}{\text{भामहार}}$$

इत्युपपन्नम् ।

शिखा-- अहर्गण को एक लाख से गुणा कर उसमें श्लोकोक्त ग्रहों के अंकों से भाग देने से प्रत्येक ग्रह का अंशादि फल होगा। चन्द्रमा के फल को २० से गुणा कर देना चाहिये। फिर प्रत्येक फल को अपने-अपने ध्रुवांकों में जोड़ देने से राश्यादिक मध्यम ग्रह होते हैं।

इदानीं दिनगतिसाधनमाह—

महीमितादहर्गणात् फलानि यानि तत्कलाः।
भवन्ति मध्यमाः क्रमान्नभःसदां द्युभुक्तयः॥ २५॥
समा गतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान्मृदुर्द्रुता च सा स्मृता॥ २६॥

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन;—पूर्वं गतिर्योजनात्मिका ग्रहाणां तुल्यैवोक्ता। इदानीमतुल्या। सा कलादिकल्पनावशात्।

दीपिका--कल्पकुदिनैः कल्पग्रहभगणाशालभ्यते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातेनैक दिनसम्बन्धीया ग्रहाणामंशादिका मध्यमागतयो भवन्ति।

शिखा--एक कल्प की दिन संख्या में एक कल्प के ग्रहभगण मिलते है तो १ सावन दिन में ग्रह का जो अंश कलादि भोग होगा वही ग्रह की एक दिन की गति होगी। जैसे सूर्य की १ दिन की गति कितनी है? इस ज्ञान के लिये $\frac{४३२००००००\times १}{१५७७९११६४५००००}$ =०।५९।८।१०।२१ यह अंशादिक एक दिन की रवि की गति हुई। इसी तरह सब ग्रहों की निकालनी चाहिए।

विशेष--आधुनिक खगोल शास्त्री मानते हैं कि सूर्य के चारो तरफ दीर्घवृत्त कक्षा में ग्रहों का भ्रमण होता हैं, इस कथन से शीघ्र गतिक या मन्दगतिक ग्रहों की स्थिति सम्यक् रूप से घटित नहीं होती है। पृथ्वी से अत्यधिक दूर कक्षा में भ्रमणशील ग्रह की कक्षा परिधि से निकटतम कक्षा भ्रमणशील ग्रह की कक्षा परिधि कम होने से निकटस्थ ग्रह को शीघ्रगतिक एवं दूरस्थ ग्रह को मन्दगतिक कहना चाहिए। अथवा जिस ग्रह का बिम्बान्तर सूत्र कम है उसकी गति अधिक और जिसका बिम्बान्तर सूत्र अधिक है उसकी गति कम होगी ही जैसा आचार्य ने कहा भी है कि "वृते लघ्वो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ता इति।"

इदानीमतुल्यत्वे कारणमाह—

कक्षाः सर्वा अपि द्विविपदां चक्रलिप्ताङ्किताास्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण॥ २७॥

यतः सर्वा अपि कक्षाश्चक्रकलिप्ताभिरेवाङ्किताः, अतो महति वृत्ते महत्यो लिप्ताः स्युः। लघुनि लघ्व्यः। तद्यथा चन्द्रकक्षा सर्वाधःस्था लघुः। तस्यामेका कला पञ्चदशभिर्योजनैर्भवति। शनेः कक्षा सर्वोपरिस्था सा महती। तस्यामेका कला योजनानां षड्भिः सहस्रैरेकसप्तत्योनैः ५९२९ भवति। योजनं चतुःक्रोशमेव। अतश्चन्द्रात् शकाशाद्दूरोर्द्ध्वस्था बुधशुक्रादयः क्रमेण मन्दाक्रान्ता मन्दगतय इव भान्ति। मन्दाक्रान्ताच्छन्दोऽपि सूचितम्।

इति सिद्धान्तशिरोमणि वासनाभाष्ये प्रत्यब्द शुद्धिः ॥५॥

दीपिका—चक्रकला परिधौ (२१६००) इष्टग्रहकक्षायोजनानि लभ्यन्ते चेतदैकया कलया किमित्यनुपातेनैककलायां योजनसंख्याचार्येणोक्तेति। कक्षाभेदाद्योजनमानं भिन्नं-भिन्नं भवत्येवेति।

इति पर्वतीय केदारदत्तकृत दीपिकाटीकायां प्रत्यब्दशुद्धिः।

शिखा—किसी ग्रह की कक्षा बड़ी है; किसी की छोटी। योजनमान तुल्य होते हुए भी प्रत्येक कक्षा में कलादि कल्पना से कलादिमान भिन्न-भिन्न होना ही चाहिए। और इसन्यूनाधिकता से ग्रहों की भी गति अपेक्षित शीघ्र और मन्द होगी ही। जैसे चन्द्रकक्षा सब के नीचे है, उसमें एक कला में १५ योजन मापा गया है तो इसी माप से शनि कक्षा अत्यन्त दूर होने से उसमें एक कला ५९२९ योजन की होगी।

पर्वतीय केदारदत्तकृत शिखा टोका में प्रत्यब्दशुद्धि प्रकरण समाप्त।

इदानीमहर्गणादौ विशेषमाह।

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्
सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्।
तदाधिमासावमशेषकं च
कल्पाधिमासावमयुक्तहीने ॥ १ ॥

इह किल स्थूलतिथ्यानयने यस्यां तिथौ यो वार आगतः स चेदहर्गणे नागच्छति तदाहर्गणं सैकं निरेकं कृत्वा ग्रहाः साध्या इति ज्योतिर्विदां सम्प्रदायो युक्तियुक्त एव। यतोऽहर्गणस्य वारो नियामकः। एवं कृते यो विशेषः सोऽभिधीयते। तिथयोऽपि तद्वदित्यादि।—अत्रैतदुक्तं भवति।—यदा वारार्थं सैकोऽहर्गणः कृतस्तदाधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयने "कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वैः" इत्यादौ द्वादशगुणास्तिथयोऽर्कभागेषु याः क्षेप्यास्ता सैकाः कृत्वा द्वादशगुणाः क्षेप्याः। यदा निरेकोऽहर्गणः कृतस्तदा निरेकाः कृत्वा। तथा यदि सैकोऽहर्गणस्तदाधिमाशशेषं कल्पाधिमासैर्युतं कार्य्यम्, अवमैरवमशेषञ्च। यतः सैकासु तिथिषु सैकोऽहर्गणो निरेकासु निरेकः, तथा प्रतिदिनमधिमासशेषस्याधिमासैरुपचयोऽवमैरवमशेषस्यातो युक्तमुक्तम्।

दीपिका--अहर्गणस्य वारो नियामक इति हेतोर्यदि अहर्गणेऽभीष्ट वारो नायाति तदा सैक निरेकक्रिययाभीष्ट वारः समानीयते इति ज्योतिर्विदां सम्प्रदायः।

अहर्गणोऽनुपातेनानीयते तस्यैकरूपत्वात्। गताश्चान्द्राः मध्यममानेनानीतास्तत्रमध्यममानेनैव गततिथियोगः समुचितः। परं तस्याज्ञानात्। पञ्चाङ्गस्थस्फुटरविचन्द्रवशेन यास्मिथयस्ता एव योजितास्तेनाहर्गणः सान्तरोभवति। तच्चान्तरं मध्यमस्पष्टतिथ्यन्तरसमम्। मध्यमस्पष्टतिथ्योरन्तरं कियदितिचेत्--परमाल्परविपरमाधिकचन्द्रयोरन्तरं तिथेः परमत्वम्। तत्रपरमाल्पोरविः=म. र.−परं मन्दफलम्। परमाधिकश्चन्द्रः=म. चं.+परं चन्द्रमन्दफलम्। परमाल्परविः=म र−(२।१०।३१) परमाधिकश्चन्द्रः=म चं+ (५।२।२८) अतः—

$$\text{परंतिथिः}=\frac{\{\text{म चं}+(५।२।२८)\}-\{\text{म र}-(२।१०।३१)\}}{१२}=\text{चं.}-\text{र.}।$$

$$\text{अतः परं तिथिः}=\left\{\frac{\text{म चं}+(५।२।२८)-\text{म र}-(२।१०।३१)}{१२}\right\}$$

$$=\text{मति.}+\frac{७।१२।५९}{१२}$$ । एतेन मध्यम तिथेः सकाशात् स्पष्टाऽधिकेति सिद्धम्।

अतो मध्यम स्पष्ट तिथ्योरन्तरमेकमपि भवितुमर्हति। इति हेतोरहर्गणो वारार्थं सैकनिरेकपरम्परयैव गणिते स्वीकार्य इति।

$$\text{इष्टवासरः}=\frac{\text{अहर्गण}}{७}\pm १=\frac{\text{अह}+३०}{७}\pm १=\frac{\text{अह}}{७}+२\pm१$$

$$\text{निरेक पक्षे इष्ट वासरः}=\frac{\text{अह}}{७}-१$$ । अत्राहर्गणो ३० दिनैरन्तरितोभवेत्।

अत्राहर्गणे न हि वार एव नियामको रविरपि नियामक इति। चेदहर्गणे सैकनिरेक करणेनाभीष्टोवारोनायाति तदैतेन स्पष्टमेव विदितम्भवति वा स्पष्ट-मध्यमतिथ्योरन्तरमेकमेवार्थात् मध्यमतिथिः स्पष्टतिथेरधिकान्यूनावेति। परञ्चैत्रादि यातास्तिथयः पृथकस्था इत्यनेन मध्यमरविचन्द्रौसाध्येते। तौ मध्यम तिथेरेव कर्त्तुं युज्येते। अतो मध्यम तिथिः=स्पष्ट तिथि±१। इत्युपपन्नम् तिथयोऽपि तद्वदिति।

कोटयाहर्ट्यद्भवभैरित्यादिनाधिमासशेषावमशेषाभ्यां रविचन्द्रानयनं क्रियते। तच्च यदाहर्गणः सैकः निरेको वा क्रियते तदैकदिनजाधिमासावमशेषाभ्यामन्तरितंस्यात्। एक

$$\text{दिनजाधिमासशेषं}=\frac{\text{क.अ.मा.}+१}{\text{क.सौ.}}\quad\text{एवमवशेषञ्च}\ \frac{\text{क. अवम}+१}{\text{क. चा.}}$$

$$\text{वास्तवाधिमासशे.}=\frac{\text{अ. मा. शे.}}{\text{क. सौ.}}\pm\frac{\text{क. अवम}}{\text{क. सौ.}}$$

$$\text{एवं वास्तवामशेष}=\frac{\text{अ व शे.}}{\text{क चां}}\pm\frac{\text{क अ व}}{\text{क चां}}=\frac{\text{अ व शे}\pm\text{क अ व}}{\text{क चां}}$$ इति।

अतः उपपन्नम् कल्पाधिमासावमशेषयुक्तहीनमिति।

शिखा—अहर्गणसाधन के बाद वार मिलाते समय वार १ अधिक या कम हो जाया करता है। क्योंकि वार स्पष्ट अहर्गण माप से आता है। लेकिन अहर्गण लाते समय तिथियों के जोड़ने में मध्यम तिथियाँ ली जाती हैं। जो कि स्पस्ट मान से लेनी चाहिये। मध्यम तथा स्पष्ट तिथियों का अन्तर (स्वल्पान्तर से) १ तक हो सकता है। अतएव अहर्गण में १ संख्या तक की न्यूनाधिकता का होना सम्भव है। यह संस्कार तिथियों में अधिमास व अवमशेषादि में भी करना चाहिये। दीपिका नें यह बात अधिक स्पष्ट की गई है।

इदानीं लघुदिनौघविषयमाह।

अथैवमेवाल्पदिवागणेऽपि
सैकं निरेकं च तदावमाग्रम्।
तथाधिमासस्य तिथीर्गृहीत्वा
लघुर्दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥ २ ॥

लघ्वहर्गणे सैके निरेके तिथियोऽपि सैका निरेकाः। तत्रावमशेषमपि सैकं निरेकं कार्य्यम्। यतस्तत्रावमानयने रूपगुणा एव तिथयश्चतुःषष्ट्या हृताः। अथ लघ्वहर्गणे साध्यमानेऽभीष्टाहचैत्राद्यन्तरे यद्यधिमासोऽस्ति, तदा तस्यापि तिथीर्गृहीत्वा लघुर्दिनौघः साध्यः। अत्र लघुरिति विशेषणाद्‌बृहदहर्गणे न ग्राह्याः। यतस्तत्राधिमासानयनेन लब्धाधिमासे ता युक्ता भविष्यन्ति। लघ्वहर्गणानयने त्वब्दान्तादूर्ध्वमधिमासानयनस्याभावात् तत्रावश्यं योज्याः।

दीपिका—अल्पदिवागणेऽपि अभीष्टवारार्थं सैकः निरेको वा कार्यः। परमत्रैकदिनजावमशेषेणावमाग्रमन्तरितम्भवेत्।

एकदिनजावमशेषञ्च $= \frac{१ \times १}{६४} = \frac{१}{६४}$, $\text{अ व शे} = \frac{\text{अ व शे}}{६४}$

वास्तवावमशेष $= \frac{\text{अ व शे}}{६४} \pm \frac{१}{६४} = \frac{\text{अ व शे} \pm १}{६४}$ अत उपपन्नं तदावमाग्रमिति।

लघ्वहर्गणानयनेऽधिमासानयनस्याभावात् यदि चैत्रादित इष्टदिनमध्येऽधिमासश्चेत्पतति तदास्य-ग्रहणेनाहर्गणः त्रिंशद्दिनैरन्तरितोभवेत् अतश्चैत्रादितिथिसमूहैरधिमासस्यापि तिथयो ग्राह्याः येनाहर्गणः शुद्धोभवेदित्युपपन्नम्।

शिखा—लघु अहर्गण के आनयन में भी इष्ट दिन और चैत्रादि के अन्तर में अधिमास यदि आ जाय तो उसकी तिथियों को भी ग्रहण कर लघु अहर्गण साधन करना चाहिये।

इदानीमन्यदाह।—

स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो V.V. Imp
यदा यदा वाऽपतितोऽपि लब्धः।
सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासै-
स्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥ ३ ॥

कृत्वा युतोनं क्रमशोऽधिशेषं
दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः ।
सैकान्निरेकान्मधुयातमासा-
स्ततः प्रसाध्यौ खलु पुष्पवन्तौ ॥ ४ ॥

अथाहर्गणानयने योऽधिमास आगच्छति, स मध्यममानेन । यदा स्पष्टोऽधिमासः पतितः, अथ चाहर्गणानयने न लब्धस्तदा लब्धाधिमासान् सैकान् कृत्वाऽहर्गणः साध्यः । तदा यदधिमासशेषमागतं तच्च युतं कार्य्यम् । कैः ? "दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः"; तथा चैत्रादिमासान् सैकान् कृत्वा चन्द्रार्कौ साध्यौ । यदा वाऽपतितोऽपि लब्धस्तदास्माद्विपरीतम् । एतदुक्तं भवति ।— यदा स्पष्टोऽधिमासः पतितस्तदाऽलब्धोऽपि ग्राह्यः । यदा न पतितस्तदा लब्धोऽपि न ग्राह्यः । तदाधिमासशेषं कल्पाधिमासैर्दिनीकृतैर्यथाक्रमं युतोनं कार्य्यम् । यतस्त्रिंशता दिनैर्दिनगणोऽन्तरितः । तस्मादधिमासशेषाच्चन्द्रार्कौ साध्यौ । तदा चैत्रादयो मासाः सैका निरेकाश्च ग्राह्याश्चन्द्रार्कसाधने ।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—अहर्गण साधन में मध्यम मान से अधिमास नहीं आया । किन्तु, स्पष्ट मान से आ गया तो अधिमास संख्या में एक जोड़ देना चाहिये । इसके विपरीत हो तो १ घटा देना चाहिये । तभी वास्तविक अहर्गण होगा ।

कल्पाधिमास संख्या को ३० से गुणा कर दिन बनाकर उपर्युक्त नियम से जोड़ या घटा कर फिर चैत्रादि गत मास संख्या में भी एक जोड़ वा घटा कर सूर्य चन्द्रमा का साधन करना चाहिए ।

इदानीं शुद्धौ विशेषमाह ।—

शुद्ध्यागमे त्वपतितोऽपि स लभ्यते चे-
च्छुद्ध्या तदा खदहनै ३० र्युतया दिनौघः ।
एतद्विदन्ति सुधियः स्वयमेव किन्तु
बालावबोधविधये मयका निरुक्तम् ॥ ५ ॥

शुद्ध्यानयने स स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽपि यदि लभ्यते, तदा सोऽपि न ग्राह्यः । तस्मिन्नगृहीते त्रिंशदधिका शुद्धिर्भवति । तयाऽहर्गणस्तदा कर्त्तुं युज्यते; स्पष्टाधिमासस्य ग्रहणात् ।

दीपिका— $\frac{\text{क.अ.मा.} \times \text{इसौ.}}{\text{क.सौ.}} = \text{इ.अ.मा.} + \frac{\text{अ.मा.शे.}}{\text{क.सौ.}}$ अतः क. अ. मा. × इ. सौ. = क. सौ. क. अ. म. + अ. मा. शे. ।

∴ क. अ. मा. × इ. सौ. — क. सौ. अ. मा. = अ. मा. शे. = पूर्वाधिमासशेषम् ।
वास्तवाधिमासशेष, = क. अ. मा. × इ.सौ. — (अ. मा. — १) क. सौ. = क. अ. मा. × इ. सौ. —
क. सौ. अ. मा. + क. सौ. = पूर्वाधिमासः + क. सौ. ।

$$\text{वास्तवाधिमा-शेष} = \frac{\text{पूर्वाधिमासशेष} + \text{क.सौ.}}{\text{क. सौ.}}$$

$$\text{वास्तवाधिमासशेषद्वितीय} = \frac{३० \ (\text{पू. अ मा शे} + \text{क सौ})}{\text{क सौ.}}$$

$$= \frac{३० \times \text{पू.अ.मा.शे.}}{\text{क. सौ.}} + \frac{३०\text{क.सौ.}}{\text{क. सौ.}} = \text{पूर्वाधिमास शेष} + ३० = \text{शु.}$$

$$= \text{पू. शु.} + ३० = \text{वा. शु.}$$

इत्युपपन्नम् ।

शिक्षा—शुद्धि के साधन में स्पष्टाधिमास न पड़ने पर भी यदि अधिमास हो तो उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए । तब शुद्धि में ३० जोड़कर अहर्गण साधन करना चाहिए । विद्वानों की बुद्धि में तो यह बात दृढ़रूप से रहती ही है केवल बालशिष्यों के लिए मैंने यह बात कही है । यह आचार्य की शिष्टता व्यक्त हो रही है ।

इदानीमधिमासस्य क्षयमासस्य च लक्षणमाह—

असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्
द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च ॥ ६ ॥

यस्मिन् शशिमासेऽर्कसङ्क्रान्तिर्नास्ति, सोऽधिमास इति प्रसिद्धम् । तथा यत्र मासे सङ्क्रान्तिद्वयं भवति, स क्षयमासो ज्ञेयः । यतः सङ्क्रान्त्युपलक्षिता मासाः, अत एकस्मिन् मासे सङ्क्रान्तिद्वये जाते सति मासयुगलं जातम् । स क्षयमासः कदाचित् कालान्तरे भवति । यदा भवति तदा कार्त्तिकादित्रय एव । तदा क्षयमासात् पूर्व्वं मासत्रयान्तर एकोऽधिमासोऽग्रतश्च मासत्रयान्तरितोऽन्यश्चासङ्क्रातिमासः स्यात् ।

अत्रोपपत्तिः ;—चन्द्रमासप्रमाणमेकोनत्रिंशत् सावनदिनान्येकत्रिंशत् घटिकाः पञ्चाशत् पलानि २९ । ३१ । ५० । तथाऽर्कमासस्त्रिंशद्दिनानि षड्विंशतिर्घटिकाः सप्तदश पलानि ३०।२६।१७ । एतावद्भिर्दिवसैरविर्मध्यमगत्या राशिं गच्छति । यदाऽर्कगतिरेकषष्टिः कलास्तदा सार्धैकोनत्रिंशता दिनैः २९।३० राशिं गच्छति ; अतश्चान्द्रमासादल्पोऽर्कमासस्तदा स्यात् । एवं रविमासस्य परमाल्पता २९। २०।४० । सा चैकषष्टिर्गतिर्वृश्चिकादित्रयेऽर्कस्य । स ईदृशोऽल्पोऽर्कमासो यदा चन्द्रमासस्यानल्पस्यान्तःपाती भवति तदैकस्मिन् मासे सङ्क्रमणद्वयमुपपद्यते । अत उक्तं—"क्षयः कार्त्तिकादित्रये" इति । पूर्वं किल भाद्रपदोऽसङ्क्रान्तिर्जातस्ततोऽर्कगतेरधिकत्वान्मार्गशीर्षो द्विसङ्क्रन्तिः । ततः पुनर्गतेरल्पत्वाच्चैत्रोऽप्यसङ्क्रान्तिर्भवति । ततो वर्षमध्येऽधिमासद्वयमित्युपपन्नम् ।

क्षयमासनिर्णयार्थमत्र नृसिंहदैवज्ञकृतवासनावार्त्तिकमतं सर्वेषां सौकर्यायैव प्रदीयते तद्यथा—

अथाधिमासक्षयमासलक्षणमाह—"असंक्रान्तिमासोऽधिमास इति। अत्र गणितशास्त्रे दर्शावधि मासं चान्द्रमुशन्ति, तत्र यस्मिन् दर्शावधिके मासि मेषार्कसंक्रमणं स चैत्रो यस्मिन् वृषसंक्रमणं स वैशाख इति। एवमन्यत्रापि। यस्मिन् मासि क्रमप्राप्तं संक्रमणं न भवति स एवाधिकमास इति। उक्तञ्च "मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः। चैत्राद्यः सविज्ञेयः पूर्त्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः"—इति॥ अयमधिमासः स्फुटः स्पष्टमानेनैव स्यान्न मध्यममानेन। अनेन वासनानभिज्ञतया स्वच्छन्दप्रवर्त्तमानस्य स्वपक्षस्थापनाय च संप्रति वाक्यानि कल्पयतश्चोलभट्टस्य मध्यममानेनाधिक इति मतं निरस्तम्। "द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पततीत्यधिमासकः"। इति नियमोऽनर्थकः स्यादिति मध्यमः स्वीक्रियतामिति यदि ब्रूयात्—प्रतिब्रूयादेनम्। किं भवता कृष्णद्वितीयायां घटिकाचतुष्टये गतेऽधिकमासारम्भः स्वीकृतः। तथा सति शिष्टसमाचारभङ्गो दूषणम्। किञ्च—"यस्मिन्मासे न—संक्रांतिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्॥ इति काठकगृह्यं भवन्मते विरुध्येत। पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावधिमासकौ। तेषां कालातिचारेण ग्रहाणामतिचारतः॥ इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः—परिकीर्तितः। अग्नीषोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ॥ तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छन् कदाचन। आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतो बुधैः॥ असंक्रान्तिद्विसंक्रान्तिः संसर्पाहस्पती उभौ। समौ च बहवश्चाब्दे त्वधिमासः परःस्मृतः"॥ इति महाभारतलघुहारीतज्योतिर्नारदादिवाक्यानि च विरुध्येरन्। इह गणितशास्त्रे श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानार्थं फलादेशोपयोगाय वा शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणादिग्रहगणितजातमुच्यते। तत्र फलादेशशास्त्रेषु नारदोक्तसंहितादिषु स्मृतिषु च स्पष्टत्वेनैव व्यवहारः। यत्तु गणिते मध्यमानयनं कृतं—तत्स्पष्टत्वसाधानार्थमेव। अहर्गणोऽपि स्पष्टाधिमासवशेनैवसैको निरेकः प्राक्साधितः। किञ्च "यज्ञादिकालार्थसिद्धये गणितशास्त्रं वदामः" इति वदतामृषीणां यादृशो ग्रहगणितेप्रबन्धस्तादृश एव कर्मानुष्ठानोपयुक्तो भवति। यस्मिन् मुनिकृतशास्त्रे ग्रहयुतिमहापातादिगणितकर्म स्वल्पं दृश्यते तत्सकाममिति ज्ञेयम्। तस्याकाङ्क्षापूरणमन्यमुनिशास्त्राद्विशेषगणितप्रतिपादकात् कार्यम्। सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्म "इतिवत्। यथा च सूर्यसिद्धान्ते महापातसाधने गत्यन्तरं हर उक्तः, स च साकाङ्क्ष एव शाकल्ये' क्रान्तिगत्यन्तरस्यैव हरत्वाभिधानादिति। तस्मात् स्पष्टत्वेनासंक्रान्तिमास एवाधिकमासः॥ द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैः—इति वाक्यं मध्यममानाभिप्रायेणोक्तम्। मासे त्रिंशत्तमेभवेत्" इति वाक्यमुपलक्षणत्वेनाङ्गीकार्यमिति न कोऽपि दोषः। द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्य उक्तः। द्विसंक्रान्तित्वं तदा भवति यदा चान्द्रमासमानात्सौरमासमानं न्यूनं भवति। रविगतेराधिक्यं च संप्रतीदृशे रविमन्दोच्चे २।१८।०।०। वृश्चिकादिस्थिते भवतीति ज्ञेयम्। कार्तिकादित्रय एव संप्रति स्यादिति भाष्यं व्याहयेयम्। वृश्चिकादित्रयस्थेऽपि तदा स्याद्यदाधिशेषं तात्कालिकमतिस्वल्पं स्यात्। तत्स्वल्पत्वमधिकमासे पूर्वनिकटपतिते भवेदिति क्षयमासात् पूर्वमधिमासो नियतः। क्षयमासादूर्ध्वं यदैव सौरमासस्योपचयस्तदैवाधिकमास इति वर्षेऽधिमासद्वयमुत्पन्नम्। मासत्रयाभ्यन्तरेऽधिमासो भवतीति भाष्यकृदभिप्रायः। न च पूर्वोऽधिमासः क्षयमासान्मासत्रयमित एवान्तरे भवतीति

युक्तं क्षयमाससंलग्नोऽप्यधिमासः श्रूयते । "तत्प्राक्संश्यधिमासको यदि भवेत् तत्रत्यसांवत्सरं तस्मिन्शुद्धतया क्षयेऽपि—वचनात् कुर्याद्द्वयोः कोविदः" ।। इति निर्णयश्रवणात् । मासत्रयोक्तिरूपलक्षणम् । भाद्रपदोऽधिमास उदाहरणार्थत्वेनेति । इदमधिमासद्वयं क्षयश्च स्पष्टमानेनैव मध्यममानेन क्षयमासोनोत्पद्यते । मध्यमसौरमासमानस्य मध्यमचान्द्रमासमानादधिकत्वात् । क्षयमासोदाहरणं सकलागमाचार्यगणेशदैवज्ञैः कृतं—तत्प्रदर्श्यते । शकातीतकाले १४६२ सौरपक्षे दर्शान्तसंक्रान्तयश्च । अत्र मासाः—शुक्लादिका वेद्याः । भाद्रपदकृष्णपक्षेऽमातिथिर्भौमे घटिकाः ४७ रव्युदयात् । तत्रोदयात् कन्यार्को जात एतासु घटीषु । एवं सर्वत्र वेद्यम् । अश्विने ३० गुरौ—घ–१४ तत्र तुलार्कः घ–४२ अधिमासोऽयम् । कार्तिके ३० शनौ घ–४८ वृश्चिकेऽर्कः घ–४९ । मार्गशीर्षकृष्णे ३० रवौ घ–३० धनुष्यर्कः घ–४७ ।। पौषकृष्ण–३० भौमे घ–१६ मकरेऽर्कः घ–६ क्षयमासोऽयम् । माघकृष्ण ३० गुरौ घ–३ चतुर्दश्यां घ–१४ बुधे कुम्भेऽर्कः घ–३३ । शाके १४६३ वैशाखोऽधिमासः । एवं च शके १६०३ सौरपक्षे भाद्रकृष्णे १४ गुरौ घ–३ तत्र कन्यार्कः । भाद्रकृष्णे ३० शुक्रे घ–३ तत्र आश्विनकृष्णे ३० शनौ—घ–३५ तुलार्कः घ–५३ । अधिमासोऽयं । कार्त्तिककृष्ण ३० घ–१५ चन्द्रेवृश्चिकेऽर्कः घ–४७ । मार्गशीर्षकृष्णे ३० बुधे घ–० धनुष्यर्कः—घ–१६ । पौषकृष्णे ३० गुरौ घ–४८ मकरेऽर्कः घ–३५ । क्षयमासोऽयम् । ततः शाके १७४४ भाद्रकृष्ण १४ शनौ घ–२४ कन्यार्कः—घ. ५६ । भाद्रकृष्णे ३० रवौ घ. २४ । अश्विनकृष्णे ३० भौमे घ. १ तुलार्कः घ. २२ अधिमासः । कार्त्तिके ३० बुधे घ. ४४ । मार्गशीर्षशुक्ल १ गुरौ वृश्चिकेऽर्कः घ. १६ । मार्गशीर्षकृष्ण ३० शुक्रे घ. ३२ धनुष्यर्कः घ. ४५ । पौषकृष्ण ३० रवौ घ. २० मकरेऽर्कः ४ घ. क्षयमासोऽयम् ।

एवं सौरपक्षे शके १८८५ आश्विनोऽधिमासः पौषः क्षयमासः । ततः शके २०२६ भाद्रपदोऽधिमासः पौषः क्षयः ।। ततो शके २०४५ भाद्रपदोऽधिमासः । माघः क्षयमासः । अत्रैकवार्षिकी शुद्धिर्यावद्गोकुभिः कुवेदेन्दुवर्षैर्वा गुण्यते तदा तिथिस्थाने—शून्यं भवतीति तैर्वर्षैः क्षयमाससंभवमुक्तः ।। केचित्तु—सवितृमण्डलमेति यदा शशी तदनुसंक्रमणं कुरुते रविः । मखमहोत्सवनाशकरस्तदा मुनिवरैः कथितोऽधिकमासकः ।। इत्यादिवाक्यैर्योयमीदृशोऽधिमासः स एव मखमहोत्सवादौ निषिद्ध इत्याहुः । अयमर्थः । योऽयं गणिते दर्शान्तः समायाति स किल रविचन्द्रबिम्बकेन्द्रयोगकालः । तस्मात् कालाद्रविचन्द्रबिम्बप्रान्तयोगो मानैक्यखण्डकलाकालेन पूर्वमासीद्भविष्यति च तदग्रत इति स कालः साध्योऽनुपातेन । यदि गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा मानैक्यखण्डकलाभिः किमिति स कालो भवति । अनेन कालेन दर्शान्त ऊनितो युक्तश्चकार्यः । स तु बिम्बस्पर्शमुक्तिकालयोरन्तरमित्र रविचन्द्रबिम्बकालो भवति । अमुमेव मण्डलान्तमासमित्याहुः । मण्डलान्तमासानन्तरं चेद्रविम्बसंक्रमणं तदाऽधिमासः सर्वकर्मसुनिषिद्धो नान्यथाऽधिके निषिद्ध इति कर्मानुष्ठानोपयोगिकालप्रतिपादकग्रहगणितशास्त्रप्रवर्त्तकैर्मुनिभिरयं मण्डलान्तमासोऽधिमासः निर्णयायाद्दतश्चेत्तदा को न स्वीकुर्यात् । वेद एव धर्मे प्रमाणं नान्यदिति वादिनामृषीणां श्रुतिस्मृति कर्मानुष्ठानोपयुक्तं यदेव स्मरणं तदपि वेदमूलकमेव । तस्मान्मण्डलान्तमास आर्षमूलकश्चेत्तदा प्रामाणिक एव किं बहुनोक्तेन । इति दिक् ।

क्षयमासनिर्णयार्थं, सिद्धान्तशिरोमणेः प्रसिद्धाप्रचुरशास्त्रनिर्णययुक्ता च मुनीश्वरकृतामरीचिटीकाऽपि प्रकाश्यते ।

तद्यथा—इदानीमधिमासस्य क्षयमासस्य च लक्षणमाह ।

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यतः स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ॥ ६ ॥

मरीचिः—ननु स्फुटमानेनाधिमासः पतितोऽपतितो वा कथं ज्ञेय इत्यतोऽधिमासलक्षणं तत्प्रसङ्गात् । क्षयमासलक्षणं सविशेषं भुजङ्गप्रयातेनाह—असंक्रान्तिमास इति । स्पष्टशुक्लादिप्रतिपत्पूर्वलक्षणमारभ्याव्यवहिततदुत्तरस्पष्टामावास्यान्तिमक्षणपर्यन्तं कालविशेषः स्पष्टचान्द्रमासः । अत्र सूर्यस्य स्पष्टमानेनैकमेव स्वाधिष्ठितराश्यव्यवहिताग्रिमराश्यादिस्थानसंचाररूपसङ्क्रमणं भवति । तदा चैत्रादिमाससंज्ञाक्रमेणोक्तसंज्ञको मासः शुद्धः । यदि तत्र तद्रूपसङ्क्रमणाभावस्तदाऽयमशुद्धोऽधिकसंज्ञाव्यवहार्यः । तस्य चैत्रादिद्वादशराशिभ्योऽतिरिक्तत्वात् । एवं स्फुटो द्विसङ्क्रान्तिमासः । तत्र यदि तद्रूपसङ्क्रमणद्वयं तदाऽपि शुद्धमासलक्षणाभावादशुद्धः क्षयसंज्ञाव्यवहार्यः ॥

यस्मिन्मासे न सङ्क्रान्तिः सङ्क्रान्तिद्वयमेव वा ।
मलमासः स विज्ञेयः..............................॥

इति काठकगृह्यवचनेन मलत्वाभ्युपगमात् । तत्रासंक्रान्तिमासस्याधिकत्वम् ।

यस्मिन् दर्शस्यान्तादर्वागेकापरं दर्शम् । उल्लङ्घ्य भवति भानोः संक्रान्तिः—सोऽधिमासः स्यात् ॥ इति भुजबलभीमपराक्रमवचनेन—

"अमावास्यामहोरात्रे यदा संक्रमते रविः । स तु मासः पवित्रः स्यादतीतेत्वधिको-भवेत्" ॥ इत्यादिपुण्यवचनेन च युक्तम् । अतीते मासेऽतीत इत्यर्थ इति ध्येयम् । द्विसंक्रान्तिमासस्य क्षयत्वम् ।

"तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्धे तदुत्तरः ।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ" ॥

इति वचनेनैकमासद्विमासाभिधेयत्वाद्युक्तम् । ननु वर्षत्रयमध्येऽधिमासस्यावश्यं पतनं दृश्यते तथोक्तरूपपक्षस्य दर्शनाभावेन खपुष्पायितक्षयमासकथनं न युक्तमत आह कदाचिदिति । तथा चाधिमासवन्नियतकालाऽभावात् कालान्तरे तत्सम्भवप्रसिद्धयोक्त इति भावः ॥ ननु तथापि चैत्रादिसप्तस्वधिमासस्य यथायातस्तथा क्षयमाससम्भवः केषु मासेषु भवत्यत आह क्षय इति । संक्रान्तिद्वययुक्तचान्द्रमासः कार्त्तिकादित्रये कार्त्तिकमार्गशीर्षपौषान्यतममासे ॥ शुद्धमासाव्यवहिताग्रिमसंज्ञासम्भावनया कार्तिकाद्युक्तम् ॥ अन्यथा स्वरूपासिद्धेरिति ध्येयम् ॥ अन्यतस्तद्रहितमासेषु न स्यात् । यद्वा ननु चैत्रादिसप्तस्वधिमासपातदर्शनेऽप्यधिमासपतनविषयमासानामनुक्तत्वात् सर्वमासेष्वधिकसम्भवः । सर्वेषु मासेष्वधिमासकः स्यादिति वसिष्ठोक्तेश्च । तथा क्षयस्यापीति कथं कार्तिकादित्रये, इत्युक्तमत आह नेत्यादि । अन्यतः पारिभाषिकवर्तमानकालान्यकाले कार्तिकादित्रये इत्युक्तं न सम्भवति । तथा च

वर्त्तमानकालानुरोधेनमासनिर्णयः कृतः। न तु कालत्वावच्छेदेनेति न क्षतिः॥ ननु "मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्। प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः"॥ इति धर्मशास्त्रवचनम्। एकवर्षेऽधिमासद्वयान्तरं परमन्यूनाष्टाविंशतिमासासम्भवेनाधिमासद्वयाप्रसिद्धेः कथमुपपन्नं भवत्यत आह तदेति। यदा क्षयमासपातस्तदेत्यर्थः। वर्षमध्ये क्षयमाससम्बन्धिसौर-वर्षाद्यन्तावच्छिन्नकाले उक्तरूपमधिमासद्वयम् च समुच्चये भवति। तथा चाधिमासान्तरनि-यमस्य क्षयमासमुक्तवर्षान्यकालविषयत्वात्॥ क्षयमासपातवर्षेऽधिमासद्वयपातप्रसिद्धेर्वचन-मुपपन्नमिति भावः। कालनिर्णयदीपिकाविवरणकारास्तु "अधिमासद्वयंनान्यतः स्यात्"॥ अन्य-तोऽन्यतरस्मिन् कतरस्मिन्निति यावत्। तथा च क्षयमासकालात्पूर्वकाले, उत्तरकाले वा न स्यात् किन्तु तत्प्रागुत्तरकालयोरधिमासद्वयं स्यादित्यर्थयुक्तं प्राहुः॥

अत्रोपपत्तिः—ननु "द्वादशमासाः सम्वत्सरः"॥ इति श्रुतेः। सौरचान्द्रसावनवर्षेषु द्वादशाधिकमासाभावादप्रसिद्धोऽधिकमास इति चेत्। सत्यम्। "अस्ति त्रयोदशोमासः"॥ इति द्वितीयश्रुतेः। सौरवर्षे त्रयोदशचान्द्रमासानां कदाचित् सम्भवात् पारतन्त्र्येणाधिक-माससिद्धे मानयोरतुल्यत्वेन परस्परं तन्न्यूनाधिकत्वावश्यं भावात्। वर्षमासयोः सौरचान्द्रत्वेन व्यवहारे गृहीतत्वादितरमानेभ्यस्तदसिद्धेः। अन्यथा श्रुतेर्वैय्यर्थापत्तेः। अत एव वेदबाह्यानां मते मानानां स्वतन्त्रत्वेनाधिकमासः खपुष्पायितः। एतेन कल्पादौ युगपत् प्रवृत्तयोः सौरचान्द्र-मासयोरधिकन्यूनमानयोरिष्टकाले तत्संख्ययोर्न्यूनाधिकयोरन्तरं गताधिमासा गणितैनैकरूपेण भवन्तीति सूचितम्। तथा चानुपातेनैकसौरमासे चान्द्रदिनानि ३०।५५।१९।२२।३०। एक चान्द्रमासे चान्द्रदिनानि ३०॥ अनयोरन्तरेण चान्द्रमाससमाप्त्यनन्तरं सौरमाससमाप्ति-रधिकचान्द्रैतद्दिनादिना। ०।५५॥१९।२२।३०। जाताऽतोऽनेनाधिकेन सौर एकोऽधि-मासः। एतदधिकचान्द्रैकमासो वा तदा त्रिंशच्चान्द्रदिनात्मकैकाधिकमासेन के इत्यनुपातेन प्राप्तः सावयवैः सौरमासैः॥ ३२।१६।५।१४।३१। चान्द्रमासैर्वा ॥३३॥१६॥५।१४॥३१॥ (अतोऽधोऽव्ययवज्ञानार्थं भाज्यहरौ ५३११ ५९९) एकश्चान्द्रोधिमासः॥ यद्वा अनुपातेनैकचान्द्रमासे सौरदिनानि।२९।६।१९। सौरमासे सौरदिनानि ३०। अनयोरन्तरेण पूर्वानुपातरीत्या चान्द्रमास-सौरदिनेभ्यो लब्धं तदेव सौरसावनचान्द्रसावनाभ्यामेतदानयनं गोले मध्यमवासनायामाचार्येरेव स्पष्टमुक्तम्। तत्रैव सविशेषं व्याख्यास्यामः। अत एव कल्पाधिकमासैः कल्पसौरमासाः कल्प चान्द्रमासा वा तदैकाधिकमासेन क इत्यनुपातेनाऽपि तदेवेत्यति स्पष्टम्॥ उक्तं च वसिष्ठ सिद्धान्ते। द्वात्रिंद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्य-धिकमासकः॥ इति। एतज्ज्ञानं चाहर्गणानयनेऽधिशेषं क्रमोपचितं यद्दिने पूर्वाधिशेषाद्धीनं शून्यं वा तदा पूर्व मासः षष्टिदिनात्मकश्चान्द्र इष्टतिथ्यन्तावधिरिति। तथा च "ब्रह्म-सिद्धान्ते यन्मासान्ताधिशेषं स्याच्चतुर्युग्यधिमासतः॥ हीनं स षष्टिदिवसो मासः प्रायः शुभार्धभाक्॥ इति। अधिशेषात् फलं पूर्णं यद्युगाधिकमासकैः। दिनषष्ट्यात्मको मासः परमासात् पुरः स्वकः"॥ इति॥ अधिमासस्येष्टकाले गतैष्यदिनाद्यानयनं स्वधिशेषमर्ह-गणानयनं ज्ञातं गतार्थमेष्यार्थं चाधिशेषोनकल्पसौरदिनमानम्॥ कल्पाधिमासैः कल्पसौर-दिनानि तदा कल्पसौराप्ततद्रूपाधिशेषतुल्याधिमासेन कानीत्यनुपातेन कल्पसौरदिनयोर्गुण-हरयोर्नाशात्। कल्पाधिमासभक्तं फलेन सौरदिनेष्टकालावधिमासस्य पूर्वं पश्चाच्चान्तः। अत एवैष्यपरिज्ञानम्।

"महायुगार्कमासाधिशेषयोरन्तरात् फलम् । यद्युगाधिकमासेन संकशेषाद्दिनादिकम् ॥ तावन्मासोवर्त्तमानो दिनषष्ट्यात्मकः स तु"। इति ब्रह्मसिद्धान्ते उक्तमिति सुगमम्। एवमधिमासपातचिह्नं ज्ञात्वाऽधिमासपातमध्यमकालासन्नपूर्वापरमासयोश्चान्द्राहर्गणे साध्यमाने चान्द्राहर्गणयोः षष्टिदिनात्मकमन्तरं भवतीति सिद्धम् ।

तथा च मासक्रमेण प्रत्येकसिद्धानीतचान्द्राहर्गणयोर्यन्मासीययोरन्तरं षष्टिदिनात्मकं भवति यदैव तदैव तन्मासाभ्यन्तरे मध्यममानेन त्रिंशद्दिनात्मकश्चान्द्रोऽधिमासः । यदा नान्तरं तत्तुल्यं तदा नाधिमास इति। तज्ज्ञानं यथा एकोनपञ्चाशद्युतपञ्चदशशतशके १५४९ आश्विनशुक्लनवम्यां ब्रह्मतुल्यादहर्गणः १६२३६७। कार्तिकशुक्लनवम्यामहर्गणः १६२४२७॥ अत्राधिमासो मध्यममासे मध्यममानेन पतितः । एतत्प्रवृत्ति-निवृत्तिकालावुक्तदिशा ज्ञेयौ ।

"सौरेणाब्दस्तु मानेन यदा भवति भार्गव । सावने तु तदा माने दिनषट्कं न पूर्यते ॥ दिनरात्राश्च ते रामप्रोक्ताः सम्वत्सरेण षट् । सौरसम्वत्सरस्यान्ते मानेन शशिजेन तु । एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि भृगुनन्दन । समाद्वये साष्टमासे तस्मान्मासोऽतिरिच्यते । स चाधिमासकःप्रोक्तः काम्यकर्मसुगर्हितः" ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरवचनेन निषिद्धोऽप्यधिमासस्त्रिंशच्चान्द्रदिनात्मकोऽपीष्टकालानुरोधेन सत्त्वाद्गौणश्चान्द्रो न युक्तइष्टतिथ्यवधिकमासस्यानुक्तत्वात् । शास्त्रे दर्शान्तपूर्णिमान्तमासयोरुक्तत्वात् । तदेकतराभिप्रायेणाधिमासो युक्तः । अन्यथा मेषसंक्रान्त्यादिमीनान्तभोगकाले सौरवर्षे त्रयोदशचान्द्रमाससम्भवेनाधिकमाससमर्थनं भवदुक्तं व्याहन्येतेति चेदुच्यते । यत्पूर्णिमान्तश्चित्रानक्षत्रेण युज्यते स चैत्रो मासः । एवं विशाखाज्येष्ठापूर्वाषाढाश्रवणपूर्वाभाद्रपदाश्विनीकृत्तिकामृगपुष्यमघापूर्वाफाल्गुनीयुक्तपूर्णिमान्तमासः शुक्लादिः कृष्णादिर्वा विशाखादिसंज्ञः । अत्र क्वचिच्चित्रादिप्रत्यासन्न स्वात्यन्तु राधादियोगेऽपि चैत्रवैशाखादि संज्ञा न विरुध्यते ।

"द्वे द्वे चित्रादिताराणां परिपूर्णेन्दुसंङ्गमे । मासाश्चैत्रादिका ज्ञेयास्त्रिकैः षष्ठान्त्यसप्तमाः" ॥ इति संकर्षणकाण्डोक्तेः । तत्र ज्योतिश्शास्त्रे शुक्लादिदर्शान्ता एव चैत्रादिमासा उक्ताः । सृष्ट्यादिकाले प्रथमं शुक्लपक्षोत्पत्तेः । अत एव रवीन्द्वोर्युतेः । इत्यादिना दर्शान्ता एवोक्ताः । "इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्तितः ॥ अग्नीषोमौ स्थितौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ" ॥ इति हारीतवचनाच्च । तत एतन्मासाभिप्रायेणैव प्रतिपादिताधिमासस्य पर्यवसानात् । तथाहि कल्पादौ सौराश्चान्द्राश्च मासाः प्रवृत्ताः । ततस्त्रिंशच्चान्द्रदिनैर्दर्शान्तश्चान्द्रमासान्तरूपः । सौरमासान्तस्तु तत एवैभिश्चान्द्रदिनैः ।३०।५५॥१९।२२॥३०॥ वृषसंक्रमणरूपो जात इति । द्वितीयचान्द्रमासादित एतच्चान्द्रात्मकदिनादिना ।०।५५॥१९॥२२॥३०॥ वृषसङ्क्रान्तिर्जाता । अत एव दर्शाग्रतः सङ्क्रमकालतः प्राक् ॥ अधिशेषमेकमासोत्पन्नमिदमेव ।०॥५५।१९।२२।३०॥ ततो मिथुनसङ्क्रान्तिस्तृतीयचान्द्रमासादितः पूर्वोक्तैर्द्विगुणैश्चान्द्रदिनैः १।५०।३८।४५। भवति । एवं त्रयोदशचान्द्रमासादिरूपद्वितीयचान्द्रवर्षादिर्द्वितीयसौरवर्षादिरेभिश्चान्द्रदिनैर्जातः ११।३॥५२।३०। तथा तृतीयचान्द्रवर्षादिस्तृतीयसौरवर्षादिरेभिश्चान्द्रदिनैः २२।७।४५ तथा च तद्वर्षे सौरे प्रथमदर्शान्तावृवृषसङ्क्रमणमेभिश्चान्द्रैः २३।३।४।२२।३० द्वितीयादिदर्शान्तान्मिथुनादिमकरान्तं सङ्क्रान्तयश्च । मिथुनार्कः २३।५८।२३।४५। कर्कार्कः २४।५३।४३।७।३०। सिंहार्कः २५।४९।२।३०। कन्यार्कः २६।४४।२१।५२।३०। तुलार्कः

२७।३९।४१।१५। वृश्चिकार्कः २८।३५।०।३७।३०। धनुरर्कः २९।३०।२०। मकरार्कः ३०।१५।३९।२२।३०। अत्र धनुःसङ्क्रान्तिरमावास्यायां तद्गतघटिकासु ३०।२०। ततोऽमावास्यान्तान्मकरसङ्क्रान्तिस्त्रिंशच्चान्द्रदिनाधिकैरिति द्वितीयामावास्यान्ताद्गतघटिकासु १५।३९।२२।३०। मकरसङ्क्रान्तिर्जातेति सिद्धम्। एवं यत्र कल्पादित एतन्मकरसङ्क्रान्तिकालपर्यन्तं सौरमासास्त्रयस्त्रिंशत्। चान्द्रमासास्तु चतुस्त्रिंशत् सावयवाः ३४।०।२५।३९।२२।३०। अत्र चान्द्रे सौरापेक्षया एकश्चान्द्रो मासः। एतच्चान्द्रदिकञ्च ०।२४।३९।२२।३०। अधिकम्। तथा चास्मिन् सौरवर्षे द्वादशमासात्मके त्रयोदशचान्द्रमासान्ता जाताः। अत्र तृतीयचान्द्रवर्षेऽपि पूर्ववर्षरीत्योक्तलक्षणलक्षितचैत्रादिमासा मेषादिसङ्क्रान्तियुक्ताः क्रमेण जाताः। परं धनुर्मकरसङ्क्रान्त्यन्तर्गतचान्द्रमासि सङ्क्रान्त्यभावात्-तच्चान्द्रमासस्याधिकत्वं तद्वर्षे। अत एव—"मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यतेचान्द्रः। चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्त्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः"॥

इति ब्रह्मसिद्धान्ते मासलक्षणानि प्रतिपादितानि। अत्र यस्मिंश्चान्द्रमासि शुक्लादिदर्शान्तरूपे मेषादिसङ्क्रमणसम्बन्धेन (चैत्रादिद्वादशान्यतरसंज्ञाव्यवहार्यत्वम्) एकराशिस्थे सूर्ये दर्शान्तद्वयसमाप्तिस्तदाऽन्त्यामावास्यान्तावधिश्चान्द्रमासोऽधिमासो न तत्पूर्वदर्शान्तावमानक इत्यर्थः। एवमिष्टसौरवर्षादौ चान्द्रीशुद्धिः सार्धसप्तपलाधिकषट्पञ्चाशद्घटीयुताष्टादशदिनेभ्योऽधिका शुद्धिस्तदा तद्वर्षेऽप्युक्तरीत्याऽसङ्क्रान्तिमासो भवति। एतत्पूर्वपतितत्रैराशिकानगताधिमास एव व्यवहारार्थं शुक्लादिदर्शान्तचान्द्रमासरूपेण परिणमति। अनुपातावगताधिमासान्तकालेऽधिशेषाभावेनाग्रेऽसङ्क्रान्तिमासान्तेऽधिशेषस्य सम्भवात्। अत एव तस्य प्राधान्याभावादनिषिद्धत्वम्। एतदुक्ताधिमाससम्भवकालज्ञानार्थं नियतमानेनोक्तसङ्क्रान्तिमासात् पूर्वं तस्यावश्यं पतनात्। अत एव च "मलं वदन्ति कालस्य मासं कालविदोऽधिकम्"। इतिगृह्यपरिशिष्टवचनेन पूर्वप्रतिपादिताधिमासस्य मलत्वोक्तावपि "असङ्क्रान्तो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः। कालान्तरात् समायाति स नपुंसक इष्यते।" इति वचने नपुंसकत्वेन मलत्वाङ्गीकारान्न क्षतिः। "चान्द्रोमासोह्यसङ्क्रान्तोमलमासःप्रकीर्तितः"। इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तेश्च। एतन्नपुंसकत्वं तु पुरुषस्य सूर्यस्याभावात्। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते। अरुणः सूर्योभानुस्तपनश्चण्डोरविर्गभस्तिश्च। अर्यमहिरण्यरेतोदिवाकरा मित्रविष्णू च। एते द्वादशसूर्या माघादिषूदयन्ति मासेषु। निःसूर्योऽधिकमासो मलिम्लुचाख्यस्ततः पापः॥ मासेषु द्वादशादित्यास्तपन्ते हि यथाक्रमम्। नपुंसकेऽधिके मासि मण्डलं तपतेरवेः "इति॥ मलिम्लुचत्वं तु—वत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत्। नैर्ऋतैर्यातुधानाद्यैः समाक्रान्तो विनाशकैः। मलिम्लुचैः समाक्रान्तं सूर्यसंक्रान्तिवर्जितम्। मलिम्लुचं विजानीयात् सर्वकर्मसु गर्हितम्। इतिशातातपोक्तेः॥ नन्वयं चान्द्रोऽधिमासो मध्यममानेन प्रतिपादितोऽपि न युक्तः। मध्यममानस्य वस्तुतोऽसत्त्वेनासन्नत्वेन च काल्पनिकत्वात्। स्पष्टमानस्य वस्तुतः सत्त्वात् "तदभिप्रायेणाधिमासस्य युक्तत्वादिति चेदुच्यते। स्पष्टमानेनासंक्रान्तिरूपाधिमासज्ञानार्थमेवासन्नतया मध्यममानेन तस्य निरूपणात्" तथा च मध्यममानाभिप्रायिकोऽधिमास एव वस्तुभूतस्पष्टमानेन परिणमति। अत एव स्फुट इति मूलोक्तेन मध्याधिमासनिरासो व्यक्त एव। तथा च स्पष्टचान्द्रमासे स्पष्टमेषादिसंक्रमणसम्बन्धेन चैत्राद्यान्यतराभिधेयत्वान्मासि न संक्रान्तिः स एवाधिकः संज्ञाऽभावात्। संज्ञायां संक्रान्तिसम्बन्धस्य हेतुत्वात्। अत एव स्पष्टमानस्यानियतत्वेन न्यूनाधिकसंभवाद्यदा कदाचित् स्पष्टचान्द्रमासि संक्रान्तिद्वयं तच्चान्द्रमासस्य संज्ञाद्वयमर्थात् सिद्धम्। अतस्तत्रैकमास-

स्यापलापेन क्षयत्वं युक्तम्। स त्वसंक्रान्तिमासो यदा स्पष्टचान्द्रमाससावनात् सौरमास-सावनमधिकं भवति तदैव।

अथैतदर्थंगतिकलाभिरेकं सावनदिनं तदैकराशिकलाभिः किमिति गत्यन्तरकलाभिरेकं-सावनं दिनं लभ्यते तदा भगणांशकलाभिः २१६०० किमित्यनुपाताभ्यां स्पष्टगतेर्वैलक्षण्येन सौरचान्द्रमाससावनयोर्ज्ञानासम्भवात् प्रकारान्तरेण तज्ज्ञानमुच्यते। तत्रादौ सौरज्ञानार्थं स्पष्टमे-षादिद्वादशसंक्रान्तिकालेषु स्पष्टसूर्याणां सहजज्ञानात् तेभ्यः स्फुटग्रहम्— इत्यादिस्पष्टाधिका-रोक्तविलोमविधिना तत्काल एव मध्यार्काःसाध्याः। ततस्तेषु द्वयोर्द्वयोः प्रत्येकं सूर्ययोरन्तरम्। तदंशाः कार्याः। एभ्यः कल्पसौरदिनैः कल्पसौरसावनानि तदैतैः कानीत्यनुपातेन प्रत्येक-संक्रान्त्यन्तररूपसावनदिनानि स्पष्टसौरमास भवंति। एतानि यत्र गतेः परमाल्पत्वं तत्र बहूनि-यत्र परमत्वं तत्राल्पानीति सुबोध्यम्। यथा वर्तमानकाले स्वल्पान्तरेणाङ्गीकृताष्टाद्रिभागमित-सूर्यमन्दोच्चद्वादशमध्यार्काः संक्रान्तिकालीनाः॥

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
११	०	१	३	४	५	६	७	८	८	९	१०
२७	२८	२९	०	१	२	२	४	०	२९	२८	२७
५१	२०	१८	२८	२९	५	८	३९	४१	३१	३०	५२
२८	२०	८	२१	४५	४८	३२	४०	५२	३९	१५	१२

एभ्यः सावनानि संक्रान्त्यन्तररूपाणि। एतन्निबन्धनश्लोकाश्च। ॥ "त्रिंशत् पञ्च-शरादेवा मेषेऽर्केदिवसादिकम्। वृषेधराग्नयः सिद्धाः षट्शरामिथुने क्रमात्॥ धराग्नयः सप्तरामा रदाःकर्के धराग्नयः। गजाश्विनोऽक्षरामाश्च सिंहे भूवह्निपोद्वयम्। द्विशराश्च स्त्रियांत्रिंशद्गोश्विनः श्रुतयस्तुले। गोश्विनोऽद्रिशराः पक्षौ गोश्विनोभानिगोग्नयः। कौर्प्ये धनुषि गोदस्रास्तिथयो वन्ह्यो मृगे। गोश्विनोऽब्धियमाः कुम्भे गोदस्रा गोब्धयस्तथा। रामाब्धयोझषेत्रिंशद्रामदस्राधराग्नयः॥"

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
३०	३१	३१	३१	३२	३०	२९	२९	२९	२९	२९	३०
५५	२४	३७	२८	२	२९	५७	२७	१५	२४	४९	२३
३३	५६	३२	३५	५२	४	२	३९	३	०	४३	३१

अथस्पष्टचान्द्रमाससावनार्थं मासान्तग्रहणसंभूतमासगणः कार्यः।

ततः कल्पचान्द्रमासैः कल्पचन्द्रसूर्यतत्केन्द्रभगणास्तदेष्टमासगणे के इत्यनुपातेन गत-भगणांस्त्यक्त्वाराश्यादिकौ सूर्यचन्द्रौ मध्यमौ तत्केन्द्रे अपिग्राह्ये। केन्द्राभ्यां यथोक्तप्रका-रानीतफलसंस्कारद्वारा स्पष्टौ सूर्यचन्द्रौ मध्यममासान्ते साध्यौ। ततस्तयोरन्तरमंशाद्यं ग्राह्यम्। तस्मात् कल्पसूर्यचन्द्रभगणान्तररूपचान्द्रमासैर्भगणांशगुणैः सूर्यभगणांशाः लभ्यन्ते तदाऽनेना-

शांद्येन के इत्यनुपातेनानीतांशाद्येन फलेन मध्यमसूर्यः स्पष्टसूर्यात् स्पष्टचन्द्रोऽधिकश्चेद्धीन ऊनश्चेद्युतः स स्पष्टचान्द्रमासान्ते मध्यमसूर्यो भवति। एवं प्रतिमासान्तं मध्यार्काः साध्यास्तेभ्यः सौरसावनरीत्या स्पष्टं चान्द्रमाससावनदिवसादिकं दर्शान्तयोर्मध्यस्थं साध्यं तत्तु नैकरूपम्। चन्द्रोच्चस्य प्रतिदिनं भिन्नत्वात्। परन्तु दशपलाधिकैकादशघटिकाधिकत्रिंशद्दिनानधिकं भवति। ननु प्रतिवर्षं सौरमाससावनदिनेभ्यश्चान्द्रमाससावनदिनानामवश्यमेकदा न्यूनत्वसंभवात् कथं नाधिमासः पतीतिचेन्न। सौरारम्भसमाप्तिरूपसंक्रमद्वयकालान्तररूपसावनदिनेषु दर्शान्तावधिचान्द्रसावनदिनानां तन्न्यूनानां वर्त्तमानत्वमिति विवक्षणात्। एतत्तु यत्संक्रान्तौ चान्द्रमधिशेषं वर्षान्तः पात्यधिकं तदूनत्रिंशद्दिनमिताधिस्पष्टशुद्धया स्पष्टाधिमासपातस्तत्संक्रान्त्यवधिकालेनाग्रिमकाले इति सुबोधम्। तत्र वर्षान्तः पातिचान्द्राधिशेषस्य संक्रान्तिकालीनस्य ज्ञानम्। यद्वर्षे चान्द्राधिशेषमधिकं ११।३।५२।३०। तत्सौरवर्षाधिकसावनदिना ५।१५।३०।२२।३०। वमदिन- ५।४८।२२।७।३० योगेन भवति। सावनावमयोगे चान्द्रत्वात्। अतो मेषादिसंक्रान्तौ यत् स्पष्टसौरसावनं तस्य त्रिंशतश्चान्तरं त्रिंशदिनेभ्योऽधिके स्पष्टसावने धनाख्यं तन्न्यूने ऋणाख्यम्। तेषां प्रतिसंक्रमणं यथोक्तं प्रत्येकं योगोऽधिकसावनदिनानि भवन्ति। एषामेकवर्षीयावमदिनद्वादशांशेन ०।२९।१।५०।३७।३०। प्रतिसंक्रमणमेकादिगुणेन योजितेन चांद्रं स्वस्वसंक्रान्तौ भवति। यथेदृशमन्दोच्चे- २।१८। संक्रान्तो चान्द्रदिनाधिकम्। अत्र वृश्चिकसंक्रान्त्यधिदिनस्याधिकत्वात्

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
११	१	३	५	७	८	९	१०	१०	९	९	१०
३	२४	१८	२५	२२	५४	५२	१८	१५	५९	५२	११
५२	३५	३३	६	४३	३७	४३	४७	२८	३३	३४	१९

संप्रति त्रयोदशपलाधिकैकचत्वारिंशद्घटीयुतैकोनविंशतिदिनाधिकस्पष्टशुद्धया मेषसंक्रान्तिवृश्चिकसंक्रान्त्यन्तरकालेऽवश्यमधिमासपातः। अत्र सौरसावनाच्चान्द्रसावनस्य न्यूनत्वात्। तत्र स्पष्टशुद्धिर्यत्संक्रान्त्यधिदिनेयुता त्रिंशदधिकातत्संक्रान्तिमध्येऽधिमासश्चान्द्रोभवति। स्पष्टशुद्धिस्तु सम्प्रतिमध्यमचान्द्रीशुद्धिर्मन्दफलचान्द्रदिनोनाभवतीति प्रतिपादितम्। अतो मध्यमचान्द्रीशुद्धिश्चत्वारिंशत्पलाधिकत्रिपञ्चाशद्घटयधिकैकविंशतिदिनाधिका तदोक्तकालेऽधिमासः स्पष्टो भवतीति फलितम्। अत एव मेषसङ्क्रान्तावधिकदिनस्योक्तरीत्याऽऽधिक्याद्यदा स्पष्टाशुद्धिरष्टपलाधिकषट्पञ्चघटीयुताष्टादशदिनाधिका पञ्चत्रिंशत्पलाधिकाष्टघटीयुतैकविंशतिदिनाधिकामध्यमाशुद्धिर्वा तदा सम्प्रति मीनमेषसंक्रान्तिमध्येऽप्यधिमासः पततीति न क्षतिः। एवं द्विसंक्रान्तिमासोऽपि यदा स्पष्टचान्द्रमाससावनदिनेभ्यः स्पष्टसौरमाससावनदिनानि न्यूनानि तदैव। न्यूनसौरमाससावनदिनसम्भवस्तु सूर्यपरमगताविति। सम्प्रति २।१८। एतावन्मन्दोच्चेन वृश्चिकादित्रये परमन्यूनसौरदिवसात्। क्षयः कार्त्तिकादित्रये इत्युक्तम्। न च चान्द्रमाससावनं यदा कदाचिन्न्यूनं सम्प्रति कार्त्तिकादिषु भवत्येव कथं न क्षयमास इति वाच्यम्। दर्शान्तारम्भसावनात् सौरमाससावनं यदा कदाचिन्न्यूनारम्भसमाप्तिकसौरैकमाससावनदिनानां तन्न्यूनानां वर्त्तमानत्वमिति विवक्षणात्।

एतादृशं तु सम्प्रति यदा कन्यासंक्रान्तिः प्रतिपदि भवति तदानीं तुलावृश्चिकसंक्रान्ती द्वितीयायां भवतः। ततोऽग्रे धनुः संक्रान्ति २९।२७।२९ रेभिर्दिनैरित्येभ्यो यदा चन्द्र-

सावनमधिकं स्यात् "तदा कदाचिदमायां धनुःसंक्रान्तिरतोऽयं चान्द्रोमासो द्विसंक्रान्तिः। अथ चान्द्रो मासो धनुःस्थसूर्येण समाप्त इति" मेषादिस्थे सवितरि—इति वचनेन मार्गशीर्षसंज्ञः। पूर्वचान्द्रमासस्तु तुलास्थेन सूर्येण समाप्त इत्याश्विनः। अतः कार्त्तिकाख्यो लुप्तः। यदाऽमायां न संक्रान्तिः किन्तु प्रतिपदि तदा वृश्चिकार्केण माससमाप्तेः कार्त्तिकः शुद्धस्ततोऽग्रे मकरसंक्रान्ति—२९।१५।३ रेभिः सावनदिनैरित्येभ्यश्चान्द्रसावनमधिकं यदा तदा मकरसंक्रान्तिरमायामत उक्तरीत्या मार्गशीर्षो लुप्तः। यदाऽत्रापि न्यूनचान्द्रसावनेन प्रतिपदि मकरसंक्रान्तिस्तदा मार्गशीर्षो व्यक्त एव न लुप्तस्ततोऽग्रे कुम्भसंक्रान्ति—२९।२४ रेभिर्दिनैरित्येभ्यो यदा चन्द्रसावनमधिकं तदाऽमायां कुम्भसंक्रान्तिरत उक्तरीत्या पौषो लुप्तः। यदाऽत्रापिन्यूनचान्द्र सावनेन लुप्तस्तदा मीनसंक्रान्ति—२९।४९।४३ रेभिर्दिनैरित्येभ्यश्चान्द्रसावनमधिकं चेत्तदा मीनसंक्रान्तिरमायामित्युक्तरीत्या माघो लुप्तः। यदाऽत्रापि न क्षयस्तदाऽग्रे मेषसंक्रान्ति ३०।२३।३१ रेभिर्दिनैरित्येभ्यश्चान्द्रसावनदिनानामधिकत्वाभावान्न द्विसंक्रान्तिमाससम्भवः। एवं कार्त्तिकादिचतुष्टयान्यतरः क्षयमासः सम्भवति। अनयैवरीत्या तुलावृश्चिकसंक्रान्ती प्रतिपदि भवतस्तदाऽप्येषुमासेष्वन्यतमः क्षयः सम्भवति न निर्णीतः पतति। चान्द्रसावनस्यानियतत्वेन न्यूनत्वस्यापि सम्भवादतः—कदाचिदित्युक्तम्। न च कार्त्तिकादिचतुर्मासेषूक्तरीत्या क्षयमाससम्भवात्कार्त्तिकादित्रये। इत्यसंगतमिति वाच्यं स्पष्टस्यानियतत्वात्। आचार्यैरापाततो मध्यमचान्द्रसावनदिनानामधिकानामङ्गीकारात्। न हि कुम्भसंक्रान्तितो मीनसंक्रान्तिर्मध्यमचान्द्रसावनदिनेभ्यो २९।३१।५० न्यूनदिनैः सम्भवति। येन माघः क्षयः स्यात्। यद्वा कार्त्तिकादित्रयं चेत्यत्राव्यवहितत्वेन कार्त्तिकादित्रयम्। कार्त्तिक आदिः पूर्वं स्वारम्भात्पूर्वकाले यस्य तच्चतत् क्षयं च आदित्रय–मित्यनेनैव "मासानां मार्गशीर्षोऽहम्" इति भगवदुक्तेन वा मार्गशीर्षत्रयमित्यर्थस्तेन कार्त्तिकचतुष्टये इति पर्यवसानात्। अन्यथा कार्त्तिकत्रये इत्यनेनैवादिग्रहणमनुपपन्नं स्यात्। अत एवास्य क्षयमासस्यैकमासग्राहित्वादंहसः पापस्य पतिरिति माधवाचार्योक्तव्युत्पत्त्याऽहस्पतित्वमुक्तम्।

"शुद्धेन्दुमासे शुद्धार्कसंक्रमद्वयमस्ति चेत्। शून्यमासः स विज्ञेयो न तत्र शुभमाचरेत्। अंहोनाममहापापं शून्यमासे शुभे कृते। जायतेऽहस्पतिः प्रोक्तः संज्ञाभेदेने चेति सः"। इति ब्रह्मसिद्धान्तोक्तेश्च॥ अथ कन्यातुलावृश्चिकान्यतमसंक्रान्तिः प्रतिपद्यधिमासं विना न सम्भवतीति क्षयमासात् पूर्वमधिमासः पतत्यसंशयमिति त्र्यंशोनविंशत्यादिद्वाविंशत्यवसानान्तर्गतस्पष्टशुद्धचा द्वाविंशत्या चतुर्विंशमित्यवसानान्तर्गतमध्यमशुद्धचा वा क्षयमासः सम्भव इति फलितम् २।१८ ईदृशे रविमन्दोच्चे।

अथ यदा क्षयमासस्तदा कुम्भमीनस्थेऽर्के गत्यपचयेन सौरसावनस्य चन्द्रसावनाधिक्यावश्यंसम्भवेन मीनसंक्रान्तिर्मेषसंक्रान्तिर्वा पूर्वामास्थसंक्रमात् स्वसावनदिवसैः प्रतिपदि भवत्यवश्यमिति मीनान्तभोगावधितत् सौरवर्षे क्षयमासोत्तरं द्वितीयोऽप्यसंक्रान्तिमासोऽधिमासोभवत्यत उक्तं तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं चेति। "अथ यथा तिथ्यर्ध्ये प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्ध्ये तदुत्तरः। मासविति बुधैश्चिन्त्यो क्षयमासस्य मध्यगो"। इति वचनेन क्षयमासोत्पन्नमृतानां जन्ममासफलश्राद्धाधिकस्य निर्णयः कृतः। जातकशास्त्रे चैत्रादिद्वादशमासानां फलश्रवणात्। तयाऽसंक्रान्तिचान्द्रमासाधिमासे तादृशानां कथं निर्णयः। चैत्राद्यन्यतमसंज्ञाभावात्। न चास्य पूर्वशेष-

त्वेन संज्ञाभावामासेऽपि पूर्वमासान्तर्गतत्वात् संज्ञा युक्ता। तथा हि यदा शुद्धाषाढस्य कृष्णचतुर्दश्यां दर्शे वाऽर्क संक्रान्तिर्भवति। शुद्धश्रावणमासस्य शुक्लपक्षे प्रतिपदि द्वितीयायां वा सिंहसंक्रान्तिस्तदा कर्कसंक्रान्तियुक्तस्य शुद्धाषाढत्वयुक्तम्। तदीयस्य दर्शस्य कर्कस्थे रवाववसितत्वात् सिंहसंक्रान्तियुक्तस्यापि श्रावणत्वमुचितम्। तदीयदर्शस्य सिंहस्थे रवाववसितत्वात्तेनैवन्यायेन तयोर्मध्यवर्त्तिनः संक्रान्तिरहितमासस्य दर्शः कर्कस्थ एव रवौपूर्यत इति पूर्वाषाढवदेतस्याप्याषाढत्वं युक्तम्। मेषादिस्थे—इत्यादिवचनात् "तावन्मासो वर्तमानो दिनषष्ट्यात्मकः स तु। निःशेषजः फाल्गुनश्चेच्छुद्धः—पापार्धयुक्क्रमात्" इति। ब्रह्मसिद्धान्तोक्तेश्चेति वाच्यम्। तथा शिष्टव्यवहारादर्शनादिति चेत उच्यते। मेषादिसंक्रान्तीनामेव शुद्धमास संज्ञाप्रयोजकत्वादसंक्रान्तिमासस्यासंज्ञस्य। "षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः। पूर्वार्धं तु परित्यज्यकर्त्तव्या उत्तरेक्रिया आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः। एवं षष्टिदिनोमासस्तदर्घं तु मलिम्लुचः" "षष्ट्या हि दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः। पूर्वार्धं तु परित्यज्य उत्तरार्धं प्रशस्यते"। इत्यादि ज्योतिःपितामहादिवचनैरधिमासस्याग्रिममाससंज्ञत्वप्रतिपादनेन तदन्तर्गतत्वान्न क्षतिः। ननु स्पष्टमानपतितासंक्रान्तिमासस्याधिकत्वं न युक्तम्। शुद्धेन्दुमासे शुद्धार्कसंक्रमो नास्ति यत्र तम्। संसर्पमासं सत्कर्मनाशनं विद्धि नारद "इति ब्रह्मसिद्धान्तवचनेनतस्य संसर्पसंज्ञत्वात्। किन्तु, "मध्ये चान्द्रमसे नास्ति मध्यमार्कस्य संक्रमः। यत्रासावधिकः पापी सर्वकर्मविनाशनः" इति। तद्वचनेनपूर्वप्रतिपादितमध्यममानपतितासंक्रान्तिमासस्याधिकत्वं युक्तम्। तस्मान्मध्यममानेनासंक्रान्तिमासस्याधिकत्वे सिद्धेऽधिमासज्ञानार्थं स्फुट इति स्थाने मध्यमपदापेक्षायुक्त। अन्यथाऽधिमास इति पदस्याने संसर्प इत्युक्तं स्यात्। न च वचनेन मध्यासंक्रान्तिमासरूपाधिकस्य मध्यमपदं विनाऽपि सिद्धत्वात्तस्य तादृग्रूपत्वाच्च मध्यमपदापेक्षा। स्फुट इतिपदं तु क्षयमासार्थमेव दत्तम्। अन्यथाऽधिकमासस्य मध्यममानेन सत्वात्। तदनुरोधेन मध्यमानवशात् क्षयमासानुत्पत्त्यापत्तेः। मध्यमसौरसावनान्मध्यमचान्द्रस्य न्यूनत्वात्। तथा च मूले मध्यमानाभिप्रायेणाधिमास उक्त इति नोक्त दोषः।

एवं यदधिमासवचनेषु संक्रान्तिपदं मासपदं च तद्विशेषवचनानुरोधेन मध्यमपरं व्याख्येयं न स्फुटपरम्। युक्तं चैतत्। अहर्गणनयनेनमध्यममानानीताधिशेषदिनानांमध्यामान्तमध्यमसंक्रान्त्यन्तर्वर्तिनांगतमासयोजनेऽधिकत्वेनाधिकमासयोजनेत्याग इत्यस्य "गोलेदर्शाग्रतः" इत्यादिश्लोकाभ्यांमध्यममानेन प्रतिपादनात्। स्पष्टमानेनमार्गशीर्षत्रयेधिमासाभावनिश्चयात्। "सर्वेषुमासेस्वधिमासकः स्यात्"—इतिविरोधाच्च। अस्य द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैः" इत्युक्तावधिनाऽवश्यंसम्भवश्च। एतज्ज्ञानं तु मध्यामावास्यां मध्यमसंक्रान्ति च प्रसाध्योक्त लक्षणेन कार्यमतःसर्वं सुन्दरमितिवाच्यम्। "स्पष्टमानेनाधिमासाभावे। स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धः"—इति विशेषस्यासङ्गतत्वापत्तेरितिचेत्। स्पष्टाधिमासज्ञानार्थमेवास्य लक्षणस्य प्रवृत्तेः। मध्यसंक्रान्तिमासस्याधिकत्वेऽपि स्पष्टासंक्रान्तिमासस्योक्तलक्षणेनाधिकत्वे बाधकाभावाच्च वस्तुतः स्पष्टमानस्य पारमार्थिकत्वेन तदनुरोधात् पतितासंक्रान्तिमासस्याधिकत्वं मुख्यं वस्तुभूतार्थत्वात्। मध्यमस्य काल्पनिकत्वेन वचनबलादमुख्यत्वम्।

अन्यथा—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ। पूर्वोमासः प्रशस्तः स्यादपरस्त्वधिमासकः।

एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्मदृश्यते उभयोः। तत्रोत्तरोधिमासः स्फुटगत्या त्वायमर्केन्द्रोः। इति जाबालिवचनमनुपन्नं स्यात् अत एव "शिनीवालीमतिक्रम्ययदासंक्रमते रविः। रविणा लङ्घितो मासो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु"। इति वचनेन क्षयासात् पूर्वोत्तराधिमासयोर्निषिद्धयोर्मध्ये- "मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्। प्राकृतस्तत्रपूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः"॥ "इत्या- द्युक्तवचनैः पूर्वाधिमासस्य कर्मार्हत्वेनाधिमासवन्न निषिद्धत्वमिति प्रतिपादनात्। सम्यक्संसर्पतीति- संसर्पइति शुद्धेन्दुमासे" इत्यादि वचनेन क्षयमासात् पूर्वाधिमासः संसर्प इति" युक्तम् यथा– माधवाब्देषु षट्स्वेकमासे दर्शद्वयंयदा। द्विराषाढः सविज्ञेयः·········॥ इतिवृद्धमिहिर- वचनेन द्विराषाडसंज्ञा। केचित्तु पूर्वपतिताधिमासस्य कर्मानर्हत्वमितराधिमासजातीयत्वात्। क्षयोत्तराधिमासस्तु क्षयानुरोधान्न निषिद्धस्तादृश इति कर्मार्हत्वेन संसर्पः। "कार्त्तिकादिषु मासेषु यदि स्यातां मलिम्लुचौ। सर्वकर्महरः प्रोक्तः पूर्वस्तत्रमलिम्लुचः"। इति वचनाच्चे- त्याहुस्तन्न समूलबहुवचनविरोधात्। यत्तु दर्शान्ते सूर्यचन्द्रयोः पूर्वापरान्तराभावेन योगो भूगर्भ- स्थानां दृग्योग्य इति केवलदर्शान्तिमासान्तस्तु भगर्भगाणाम्॥ भूपृष्ठस्थानां तु यदा सूर्यचन्द्र- योर्योगोदृग्योग्यस्तदा मासान्त इति। लम्बनघटीसंस्कृतगणितागतप्रसिद्धदर्शान्तो मासान्तः सिद्धः। सूर्यग्रहे सूर्यचन्द्रयोरेकदृक्सूत्रस्थत्वसम्पादनार्थं लम्बनस्य साधित्वादतस्तादृशदर्शान्त मासाभ्यन्तरे सूर्यसंक्रमस्तदा शुद्धोऽन्यथाऽशुद्धोऽधिक इति पर्यवसन्नं न केवलदर्शान्ताभिप्रायेण- युक्तम्। तथाच तद्वाक्यम्। इदं यदुक्तं क्षितिगर्भगाणां कुपृष्ठगानामथसंप्रवये। यः साधितो दर्शविरामकालः स्फुटो भवेल्लम्बनसंस्कृतोऽत्र॥ यतः स्फुटे दर्शविरामकाले दृक्सूत्र- संस्थौ रविशीतरश्मी। कुपृष्ठगानामथ निश्चयेन स्यातां हि तद्गोलविदो वदन्ति, "इति जल्पितं तन्न। भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम्। इति सूर्यसिद्धान्तोक्तेन। लौकिके च पूर्णभगणान्तरेणसूर्यचन्द्रयोश्चान्द्रमासप्रतिपादनात् केवलदर्शान्त एव मासान्तः। नान्यत्र तयोः पूर्णभगणान्तराभावात्। न हि मासान्ते दृग्योग्ययुतिर्हेतुर्येन तदावश्यकता स्यात्। अत एव सूर्यग्रहेस्वैकदृक्सूत्रे सूर्यचन्द्रौ तदा स्वस्य सूर्यदर्शने चन्द्रः प्रतिबन्धको नान्यथेति लम्बनदानमा- वश्यकम्। किञ्च चैत्रादिमासात्मककालः सर्वत्रैकरूपः। भवदुक्तौ त्वेकस्मिन् क्षणे कुत्र- चिच्चैत्रः क्वचिद्वैशाखः। एवमधिमासोऽपि सर्वदेशे" एककाले न भवतीति दिक्। यदपि अधिमासनिर्णये दर्शान्तमासं प्रसिद्धं विहाय मण्डलान्तमासोऽङ्गीकृतः। तथा हि दर्शान्तकाले मण्डलकेन्द्रयोरेव प्रागपरान्तराभावो न मण्डलयोः। तथा च रवीन्दोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या"— इत्यादिवाक्येन मासस्य रविचन्द्रसंयोगकालावधिकत्वमेव प्रतिपाद्यते। एवं च चन्द्रबिम्बा- परभागस्य यदाऽर्कबिम्बप्राङ्नेमिदेशान्निःसरणे तदैव तयोरसंयोग इति तदवधिकमास एव मास इति वक्तुं युक्तम्। स च विधोरर्कमण्डलभोगकालेनाधिक एव सम्पद्यते तन्मानंतु गत्यन्तरकलाभिः षष्टिघटिकास्तदा मानैक्यखण्डकलाभिः का "इत्यनुपातेन अत एवागतफलं द्विगुणमासन्नतया" चन्द्रार्कयोस्तु बिम्बैक्यं प्रतिपद्दर्शसन्धिषु। अमान्तावुभयत्राऽपि रसनाड्यो- ऽर्कमण्डलम्॥ इत्युक्तं स्वग्रन्थे। तथाच प्रागमान्तावर्वागेवप्रथमसंक्रमेऽनन्तरमव्यवहित- द्वितीयामान्तान्मण्डलभोगकालाधिकाप्रावत एव द्वितीयसंक्रमस्तदा समासस्त्वसंक्रान्तिकत्वा- वधिक इति। सवितृमण्डलमेति यदा शशी तदनु संक्रमणं कुरुते रविः। मखमहोत्सव- नाशकरस्तदा मुनिवरैः कथितोऽधिकमासकः"॥ इत्यत्र मण्डलपदोपादानात् "स्फुटगत्या यदा चन्द्रो रविमण्डलनेमिगः। तदूर्ध्वं संक्रमेभानोर्मासः स स्यान्मलिम्लुचः॥ अमां संत्यज्य

घटिकास्तिस्रः किं स्तुघ्नसंज्ञके । संक्रान्ति कुरुते भानुः पूर्वमासोऽधिकस्मृतः" ॥ इति पौलिशवशिष्ठोक्तेश्च । एवं पूर्वदर्शान्ताद् घटीत्रयादनन्तरं पूर्वसंक्रमे सत्येव क्षयमासः । अन्यथा शुद्ध इति उक्तन्यायात् । तथाच तद्वाक्यम् । "दर्शप्रतो मण्डलनाडिकान्तं मासः ससूर्येन्दुसमागमान्तः । तदन्तरे चेद्रविसंक्रमः स्यात्तदा स शुद्धस्त्वधिकोऽन्यथाऽसौ" ॥ इति सिद्धान्तसुन्दरकारेण जल्पितं तदप्यत्यत् । भगणान्तरेण चान्द्रमासोक्तौ मण्डलकेन्द्रयोरेव पूर्वापरान्तराभावेन योगस्य विवक्षितत्वादधिकमासार्थमपि दर्शान्तिमास एवास्तु लाघवात् । 'सवितृमण्डलम्'–इत्यादिवचनेऽपि मण्डलपदस्य केन्द्रपरत्वाद्यथाभूतोऽर्थः। वचनानां काल्पनिकत्वेन ऋषिभिर्मण्डलान्तमासस्यानुक्तत्वाच्च । अन्यथासूर्यस्यमण्डलपश्चिमनेमिरश्म्यादि संयोगस्य—संक्रमणाङ्गीकारेध्वतिप्रसङ्गापत्तेः ।

किञ्च मण्डलान्ताभिप्रायिकाधिमासस्य निषेधार्थमुपयोगाद्ग्रहचारस्य मण्डकेन्द्रमधिकृत्यसर्वाभ्युपगमाद्ग्रहणितार्थंदर्शान्ताभिप्रायिकाधिमासकथनस्योचितत्वेन गणितविशेषकथनावसरे विनोपयुक्ताधिमासं मण्डलान्ताभिप्रायिकाधिमासकथनं ज्ञानराजगणकानामुपहासस्पदमित्यलं परोक्तदोषगवेषणपल्लवितेन ॥६॥

इदानीं गणकानां प्रतीत्यर्थं क्षयमासकालान् गतागतान् कतिचिद्दर्शयतिस्म । गतोऽब्ध्यद्रिनन्दै—९८४ मिते शाककाले तिथीशै—१११५ भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः—१२५६ ॥ गजाद्यग्निभू—१३७८ भिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दु—१४१ वर्षैः क्वचिद् गोकुभिश्च ॥७॥

मरीचिः—अथायं क्षयमास उपपत्तिसिद्धोऽपि वर्त्तमानकाले कुत्रापि न दृष्टइत्युक्तमेतन्निरूपणमाचार्याणामप्रसिद्धत्वात् सांशयिकत्वादिति मन्दाशङ्का परिहरन् भुजङ्गप्रयातेनाह गत इति । षड्विंशत्यूनसहस्र--९७४ मितशकवर्षेगतेऽयं क्षयमासो गतो भूत्वा गत इत्यर्थः । ग्रन्थस्यतच्छकोतरं प्रवृत्तेः । ग्रन्थसमाप्त्यवसरे--रसगुणपूर्णमही--१०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः "इत्युक्तत्वात् । तथा चास्य प्रसिद्धत्वेन निश्चयत्वेन तन्निरूपणं युक्तमितिभावः । ननु तत्रास्मादृशामभावात् पतित इत्यत्र किमानम् । युक्तेरप्रयोजकत्वात् । आरोपे सति निमित्तानुसरणम् । न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः"--इति न्यायाच्चेति मन्दाशङ्कां परिहरति । तिथीशैरिति । पञ्चदशाधिकैकादश--१११५ शके भविष्यति क्षयमासः । तथा चोक्तकालस्यासन्ने भविष्यत्वाद्युस्मादृशां सत्त्वेन तत्र निर्णयः--सुखेन भविष्यतीति न क्षतिः । अथ प्रसङ्गात् तदग्रिमकालमप्याह । अथेति षट्पञ्चाशद्युतद्वादशशत १२५६ मित शालिवाहन शकेतथा क्षयमासो भविष्यतीत्यर्थः विशेषज्ञानार्थं तदग्रिमकालमप्याह गजाद्यग्निभूमिरिति । द्वाविंशत्यूनचतुर्दशशत--१३७८ मितशके भविष्यति । ननु तथाऽङ्गाक्षसूर्यमितः शकः पतितकालः कथं ज्ञात इत्यतोऽनेक भविष्यशककथने ग्रन्थविस्तरभयेनोपसंहारं वदंस्तदुत्तरमाह प्रायश इति । अयं क्षयमास उक्तलक्षणः कुवेदेन्दुवर्षैरेकचत्वारिंशद्युतशत--१४१ मितवर्षैः क्षयमासपतितकालात् पुनः क्षयमासः प्रायशो बाहुल्येन किञ्चिन्न्यूनपूर्णनिश्चयेन भवति । कदाचिन्न भवत्यपि सांशयिकत्वात् । अतो ग्रन्थोत्तरपूर्वतत्पतितशककालयोरेतन्मितोक्तयो—९७४।१११५ रन्तरमेकचत्वारिंशदधिकशतम् । ततो भविष्यशकज्ञानं सुलभमिति तथाऽङ्गाक्षसूर्यमितशकोगतशकः कथमुक्तः पूर्वशकेनोक्तान्तराभावादत आह क्वचिद्गोकुभिश्चेति । पूर्वोक्तसम्भववर्षेष्वनियमात् क्वचित् कस्मिन्नपि काले कदाचिदिति यावत् । एकोनविंशतिवर्षैस्तत्सम्भवसम्भावना ।

तथा च सम्भववर्षयो १४१।१९ विकल्पाद्गजाद्रिभूमितः शकः साधूक्तः। तथाहि—अङ्काक्षार्क—१२५६ मितशकानन्तरमुक्तविशाऽयं शकस्त्र्यूनचतुर्दशशतमितः। एकोनविंशतिवर्षाणामपि क्षयमाससम्भवकालान्तरत्वात् तच्छकात् पूर्वमप्येकोनविंशतितमे वर्षे क्षयमाससम्भवः।

अत क्षयमासान्तरवर्षाणि द्वाविंशत्यधिकशतमपि सम्भवति एवं तद्योगमित—१६० वर्षान्तराणामपि सम्भवः। एवमनेकधा सम्भववर्षाणीतिविशेषज्ञानं तच्छककथनेन सूचितम्।

अत्रोपपत्तिः—। यदा द्वाविंशत्यादिशुद्धिस्तदा क्षयमाससम्भव इत्युक्तं प्राक्। अतोऽब्ध्यद्रिनन्दमिते शके तादृशगतशुद्धेः सत्त्वाद्भवत्येव क्षयमासः। तथा हि तयोक्तप्रकारेण शुद्धिश्चान्द्री २१।१२।५२।३० न चास्यास्तन्मितत्वाऽभावात् कथं क्षयमास इति वाच्यम्। सौरवर्षादौमध्यमसूर्यस्य शून्यत्वेन तस्य वक्ष्यमाणबीजफलेन संस्कारात्। काले मध्यममानेन मेषादौ न यात्यतो बीजफलस्यर्णत्वादवगतमध्यमसौरवर्षादिकालादग्रे बीजफलोत्पन्नकालेन मध्यमसौरवर्षादिसम्भवात् "तत्संस्कारेण द्वाविंशत्यादिशुद्धेः सत्त्वात्। यथा तत्र सूर्यबीजं खाभ्रखार्कैः"—इत्याद्युक्तप्रकारेणानीतं कलाद्यम् ६२।१७।४२। अस्मान्मन्दफलवत्साधितचान्द्रकालेनदिनादिना १।४।१४। युता शुद्धिः २२।१७।७। न च—तयाऽपि निर्णयाभावः शुद्धेः सम्भवद्योतकत्वप्रतिपादनादिति वाच्यम्। तत्र शके क्षयमासपतनस्य निश्चयात्। तथाहि मन्दफलचान्द्रदिनो २२।१२।२७ ना स्पष्टसौरवर्षादौ शुद्धिः १९।०।२५। एवमुक्तरीत्या स्पष्टोऽह्नपः ०।७।३३ आभ्यांमेषादि संक्रान्तयस्तत्र तिथ्यन्तद्वारैतत्सूर्योदयगतघटीषु साधितास्ता लिख्यन्ते। अत्रोक्तरीत्याऽमास्थतुलासंक्रान्तितो वृश्चिकसंक्रान्तिः प्रतिपद्यतः कार्त्तिकोऽधिमासः। एवंप्रतिपत्सङ्गजातमकरसंक्रान्तितः कुम्भसंक्रान्तिरमायामत उक्तरीत्या माघोद्विसंक्रान्तिमासोऽतः पौषस्य क्षयः। ततो मीनसंक्रान्तिः प्रतिपद्यतः फाल्गुनोऽधिमासः। एवं धूलीकर्मणा भविष्यच्छकेऽपि निश्चयोऽवगन्तव्यः। एवं यदाशुद्धिस्तदा क्षयमास इत्येकवर्षशुद्धिर्यद्गुणा खरामतष्टाशून्यं तद्वर्षान्तरेण क्षययामासात् पुनस्तत्सम्भव इति सुलभम् "शुद्धिः ११।३।५२।३०। एकचत्वारिंशदधिकशतगुणाखाग्नितष्टा ६।२२।३०" एकोनविंशतिभिश्च—०।१३।३७।३०' 'अत्र निरग्रा नेत्यतः प्रायश इत्युक्तम्"। एवं तद्योगान्तरवर्षाभ्यामपि सम्भवसम्भावना युक्ता। यद्यपि खार्कवर्ग—१४४००० वर्षैरकेवर्षीयशुद्धि ११।३।५२।३० गुणिता—१५९३३० त्रिंशत्तष्टा शुद्धचतीति तद्वर्षैः क्षयमाससंभावनं सूक्ष्मं वक्तुमुचितं तथापि निर्णयाभावाद्बहुकालान्तरत्वाच्चाचार्यैरुपेक्षितम्। अग्रेऽप्येतच्छकयोः १६०३ "१७४४" क्षयमासो गणितेन मार्गशीर्षेऽवश्यं पततीति नाप्रसिद्धिस्तथा च मत्पद्यम्।

"गुणपूर्णनृपै १६०३र्युगाब्धिमेघैः १७४४ समयोः शाकजयोः समैः क्षयौ स्तः। अधिकाविषमासि चैत्रमासे क्षयतः प्रागपरौ भविष्यतोऽतः"—इति।। न च क्षयमासस्य ग्रहगणिते प्रयोजनाभावात् प्रसङ्गतो निरूपणमपिनोचितमितिवाच्यम्। अहर्गणानयने मासग्रहे तदावश्यकत्वात्। तथाहि वृहदहर्गणार्थं क्षयमासस्य द्विसंक्रान्तिकस्यद्वितीयसंक्रान्तिप्रयुक्तसंज्ञस्य सत्त्वात्तत्रनिरेका गतमासा एकमासस्याभावात्। यावदधिमासान्तस्तत्प्रे तदधिमासस्याहर्गणानयनागताधिमासाभावादेकोऽधिमासो ग्राह्यः। क्षयमासो न्यूनश्चेति यथागतकेवलगताधिमासा ग्राह्याः। लघ्वहर्गणार्थमपि क्षयमासोनगतमासाः। अग्रे "तथाधिमासतिथीर्गृहीत्वा" इत्याद्युक्तत्वादसंदिग्ध-

मिदमाचार्यैरिति सुगमत्वेन स्वतोज्ञेयत्वादुपेक्षितं क्षयमासकथनेनैव वा द्योतितमिति सर्वमवदातम् ॥७॥

इदानीमस्य प्रश्नमाह ॥ यत् प्रोक्तं फलकीर्त्तनाय मुनिभिर्वर्षेऽधिमासद्वयं तत्प्रब्रूहि कथं कदा कतिषु वा वर्षेषु तत्सम्भवः। एवं प्रश्नविदांवरेण गणकः पृष्टो विजानातिय स्तंमन्ये गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने भास्करम् ॥८।

मरीचिः—ननुक्षयमासनिरूपणं त्वदुक्तमिदं पूर्वग्रन्थोक्तत्वाभावादप्रमाणमित्यतोऽस्य-प्रश्नकथनव्याजेन स्वप्रागल्भ्यं सूचयँस्तदुत्तरं शार्दूलविक्रीडितेनाह—यदिति। मुनिभिर्वसिष्ठादिभिर्यल्लक्षणाक्रान्तमधिमासद्वयमेकवर्षे तद्द्वयमित्यर्थः॥ फलकीर्त्तनाय—"प्रायशों न शुभः प्रोक्तो ज्येष्ठश्चाषाढ एव च। मध्यमौचैत्रवैशाखावधिकोऽन्यः सुभिक्षकृत्॥ प्रायः कार्तिकमासस्य वृद्धिर्नेष्टेह तादृशी॥ आत्यन्तिकी यदा सा स्याज्जगदौत्पातिकं तदा॥ देवकार्त्तिकमासोऽयं वर्धते नापि हीयते। मासानामितरेषां वै वर्द्धनं प्राह नारदः॥ सर्वेषु मासेष्वधिमासकः स्यात् तुलादिषट्केऽपि च शून्यमासः। संसर्पकः सर्वभवो हि मासः सर्वेऽपि चैते खलु निन्द्यमासाः" ॥ "एतच्चमासत्रितयं सर्वकर्मसु निन्दितम्। यां तिथिं सुमनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः। तयैवसर्वसंक्रान्तिर्यावन्मेषं न गच्छति।" यदा वक्रातिचाराभ्यां तदतिक्रमणं भवेत्॥ क्षत्रियाणामसृग्धारास्तदा पिवति मेदिनी॥ इत्यादिफलादेशाय। एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं दृश्यते उभयोः। तत्रोत्तरोऽधिमासः·········॥ इत्यादिवचनैरधिमासद्वयम्। एतदुपलक्षितक्षयमासरूपं च प्रोक्तं निःसंशयेनोक्तम्। तत्कथं कया युक्त्यासम्भवति। अधिमासान्तरकालस्य द्वादशमासाधिकत्वेनासम्भवात्। सम्भवेऽपि कदा केषु मासेषु भवति। एकदा जातेऽपि पुनतस्मात्कतिषु कियत् संख्यापरिमितेषु वर्षेषु तत्सम्भवेऽधिमासद्वयोपलक्षितक्षयमासस्य सम्भावना वा भवति—"इतिप्रब्रूहि" अस्योत्तरं देहीत्यर्थः। एवमनयारीत्या। प्रश्नविदां समानाधिकरण्येन पूर्वपक्षकर्त्तॄणां सुबुद्धीनां मध्ये वरेणोत्कृष्टेन महापण्डितेन। अन्यथा-स्वल्पबुद्धिभिः पृष्टे यथा कथञ्चिदुत्तरेणोपेक्षया वा चरितार्थत्वात्। यो गणको ग्रहगणितगोलज्ञः पृष्टः सन् स चेद्विजानाति ज्ञात्वा समानाधिकरण्येनोत्तरं ददाति तदाऽहं तं गणकं गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने गणकरूपकमलानां मुकुलभावस्तत्समूहस्य विकासने भास्करं प्रसिद्धसूर्यं मन्ये तथाचाद्यावधि केनाऽपि तदुत्तरं नोक्तं पूर्वग्रन्थेऽनुक्तत्वात्तत्स्वरूपभास्करसमं व्यवस्थापयितुं मयैव स्वबुद्धिक्षोदेन प्रोक्तमित्यत्र सुबुद्धिरेव प्रमाणमिति भावः॥८॥

दीपिका—"मेषादिस्थे सदितरि" इत्यादिब्रह्मसिद्धान्तोक्तविधिना पूर्तिर्द्वित्वेऽथदिकस्मिन् सौरमासे चान्द्रमासद्वयस्य पूर्तौ यथा चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां मीनसंक्रान्तिः पुनः वैशाखशुक्लप्रतिपदि मेषसंक्रान्तिरित्येकस्मिन् सौरमासे चान्द्रमास उपान्त्यो जातः तदान्त्यः फाल्गुनमासोऽधिमासो ज्ञेयः चैत्रोऽपि वा ज्ञेय इति मतान्तरात्।

अथ च क्षयमासलक्षणम्—यत्र चान्द्रमासे सौरद्वयान्तस्तत्राग्रिमसौरमासः क्षयो ज्ञेयः। परमयं क्षयमासः, कार्तिकादित्रय एव कथं स्यात्? तदुच्यते—रवेः परमाधिका गतिः =६१'।२६" यतः परमं मंदफलम्=२'।१८ स्पष्टा गतिः=५९'।८"+२'।१८'=६१'।२६ परञ्चेयं गतिः नीचासन्ने ग्रहे परमाधिका स्यात्। तत्र चान्द्रसम्बन्धिकुदिनेभ्यः सौरसम्बन्धिकुदिनमल्पमत एव कार्तिकादित्रये भवितुमर्हति क्षयमासः। तस्मिन् वर्षेऽधिमास-

द्वयं कथं स्यात्तदुच्यते । पूर्वं किल भाद्रपदमासोऽसंक्रान्तिमासस्ततोऽर्कगतेरधिकत्वात् मार्गशीर्षो द्विसंक्रान्तिः पुनस्ततोऽर्कगतेरल्पत्वाच्चैत्रोऽपि असंक्रान्तिरेव, एवमेकस्मिन्वर्षेऽधिमासद्वयं स्यादित्याचार्यमतं सुस्पष्टमिति ।

सिद्धान्ततत्त्वविवेके क्षयमासविचारावसरे कमलाकरभट्टेन, सर्वमासेषु क्षयमासस्य सम्भवस्स्याद्रविमन्दोच्चस्य सर्वराशिषु चलनात्तद्वशाच्चविन्दोरपि सर्वराशिषु चलनं तत्र रविगतेराधिक्यमपि सर्वत्र सर्वराशिषु भवितुमर्हतीति युक्तियुक्तमुक्तम् ।

तानि वाक्यानि यथा—

असंक्रान्तिमासो हि चान्द्रोऽधिमासो, द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यस्तदानीम् ।
क्षयाख्यः कदाचित्ततः प्राक् च पश्चादवश्यं हि तत्राधिमासद्वयं स्यात् ॥
स्फुटैर्लक्षणैर्यैरयं तानि वर्षेष्वपि स्युर्मधोश्चान्द्रमासेषु काले ।
अतोऽयं क्षयः सर्वचान्द्रेष्वपीत्थं न जानन्ति सद्वासनाज्ञानशून्याः ॥
इदानीन्तनार्थं न शास्त्रं प्रवृत्तं न सत्कार्त्तिकादित्रयेऽत्थं तदुक्तम् ।
सुयुक्ता न मुन्युक्तिरप्यत्र शास्त्रे भवेत्कार्यवर्यस्य यादृग्विरुद्धा ॥ इति ॥

अत्र वीरमित्रोदयकालमाधवधर्मसिन्धुप्रभृतिधर्मशास्त्रनिबन्धग्रन्थपर्यालोचनेनेदमवगम्यते यत्—कार्त्तिकादिमासत्रय एव क्षयमासस्य संभवः प्रतीयते । परं पूर्वोक्तकमलाकरभट्टवचनेन तु सर्वेषु मासेषु क्षयमासो भवितुमर्हति—इति ग्रहगणितसिद्धान्त एव समादरमर्हति । कमलाकरभट्टमतमेवास्मभ्यं रोचते, गणितयुक्तिप्रामाण्यात् । अत्र विद्वांस एव प्रमाणमिति ।

शिखा—जिस चान्द्र मास में रवि संक्रान्ति नहीं होती वह चान्द्रमास अधिक मास, एवं जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्तियां होती हैं उस चान्द्र मास को क्षयमास कहा गया है । सूर्यसिद्धान्त के—"भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम्,
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ।"

इस अधिक मास लक्षण में उक्त क्षयमास विषय निहित हो सकता है ।

भास्कराचार्य ने सूर्य मन्दोच्च की २।१८° (७८°) की स्थिरता मानकर कार्तिक आदि तीन महीनों में ही क्षय मास होगा—ऐसा कहा है । क्योंकि २।१८°+६ राशि =८।१८° यह सूर्य की परं नीच राशि होगी । उच्च तुल्य ग्रह बिम्ब होने से गति कम होती है अतः राशि का भोग पूरा करने में अधिक दिन लगेंगे ही । जैसे सौर वैशाख ज्येष्ठ-आषाढ़ । एवं नीच राशि के आसन्न और नीच तुल्य ग्रह बिम्ब होने से गति अधिक होते होते परम अधिक होकर पुनः कम होते होते परं अल्प होगी, अतः सौर कार्तिक मार्गशीर्ष आदि मासों में राशि का भोग समय कम होगा । ऐसी स्थिति में सौर मासान्त की दिन संख्या से चान्द्रमासान्त पाती (अमावस्या से अमावस्या तक) दिन संख्या अधिक हो सकती है । अब किसी वर्ष दैवात् गणित से चान्द्रभाद्रपद मास में संक्रान्ति नहीं होने से भाद्रपद मास अधिक मास हो जावेगा । फिर सूर्य की अधिक गति होने से मार्गशीर्ष चान्द्रमास में (कल्पना कीजिए कार्तिक अमावस्या के कुछ समय बाद वृश्चिक संक्रान्ति हुई फिर मार्गशीर्ष अमावस्या के कुछ समय पहिले ही यदि धनु की संक्रान्ति हो गई तो)

दो संक्रान्ति होने से मार्गशीर्ष मास का क्षय हो जाने से यह मास क्षयमास कहा जावेगा। पुनः धीरे-धीरे गति की अधिकता से चैत्र चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो सकेगी अतः सूर्य संक्रान्ति रहित चान्द्रमास अधिकमास होने से चैत्र मास भी अधिक मास हो जायगा। इस प्रकार इस एक वर्ष में दो अधिक मास और एक क्षय मास हो जावेगा। क्षय मास के पूर्व का अधिक मास संसर्प मास और अग्रिम अधिक मास, अधिक मास नाम से धर्मशास्त्रों में उच्चारित है। क्षय मास में उत्पन्न और मृत का जन्ममासफल और श्राद्ध आदि के लिये किस मास की तिथि माननी चाहिए और क्षय मास में कौन से कार्य वर्ज्य हैं और कौन यज्ञादि अनुष्ठान करने चाहिए—इत्यादि पर अपने धर्म शास्त्रों में विशेष व्यवस्थित सुनिर्णय दिये हुये हैं। जो उपरोक्त शिरोमणि की वासनावार्तिक और मरीचि जैसी सुप्रसिद्ध प्राचीन टीकाओं में अत्यन्त सुस्पष्ट भी हैं जो विद्वानों के लिये अवश्य सन्तोषप्रद भी होंगी। इत्यादि। ये टीकायें सभी शास्त्रों के शास्त्रज्ञों के लिये भी विशेष उपयुक्त होंगी।

भास्कराचार्य के उक्त क्षय मास विचार पर १६ वीं शताब्दी के अत्यन्त प्रौढ़ तीक्ष्ण बुद्धि गणक सार्वभौम कमलाकर भट्ट ने "कार्त्तिकादि त्रय" कथन में सयुक्तिक आपत्ति की है। भट्ट का कथन है कि मन्दोच्च बिन्दु भी चलित हैं (गतिमान) हैं। ग्रहों के आकर्षण केन्द्र बिन्दु जिन्हें मन्दोच्च कहते हैं उनके भी चलित होने से उससे ६ राशि की दूरी पर रहने वाले नीच बिन्दु भी चलित होंगे ही। अतः जब रवि मन्दोच्च २।१८° से २।१९°...३।१९°...४।१९...११।१९ इत्यादि हो जावेगा तो उच्चाकर्षण चलन से नीचाकर्षण चलन बिन्दु भी क्रमशः ८।१८°...८।१९...९।१९...१०।१९...५।१९ इत्यादि अवश्य होगा। अतः सभी महीनों में उक्त स्थिति होगी, सिद्धान्त तो अनादि और स्थिर माप का होता है, अतः सभी महीनों में क्षय मास हो जावेगा तो कार्त्तिक आदि तीन ही महीनों में क्षय मास होगा यह कथन सर्वथा युक्ति शून्य है। यह भास्कराचार्य पर भट्ट का आक्षेप है।

वास्तव में ग्रहगणित सिद्धान्त परम्परा को समझते हुये भट्टका उक्त कथन (सभी महीनों में क्षय मास का होना) युक्तिपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं।

उक्त विचार परम्परा से भास्कराचार्य पर कुछ आक्षेप होता है। तथा "कालमाधव, वीरमित्रोदय, धर्मसिन्धु प्रभृति धर्मशास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थों में भी कार्त्तिकादित्रय वाक्यों की जगह-सभी महीनों में क्षयमास की संभव स्थिति इन ग्रन्थकारों को भी कहनी चाहिए थी। ज्योतिष शास्त्र के आधार पर निर्णय करने वाले धर्मशास्त्रके उक्त वचनों की प्रामाणिकता में भी क्यों सन्देह किया जाय। विद्वानों का तत्कालीन निर्णय ही लोकमान्य होता आया है और होता आवेगा।

इदानीं गणकानां प्रतीत्यर्थं क्षयमासकालान् गतागतान् कतिचिद्दर्शयति स्म—

गतोऽब्धयद्रिनन्दैः ९७४ मिते शाककाले
तिथीशैः १११५ भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः १२५६।
गजाद्र्यग्निभूमिः १३७८ तथा प्रायशोऽयं
कुवेदेन्दु १४१ वर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च १९॥७॥

स्पष्टम्। यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमासः।

अत्रोपपत्तिः ;—यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमासः। सा च तथाविधा शुद्धिः तस्मिन् जाते कार्तिकादित्रये क्षयमासः सम्भाव्यते। किन्तु सत्रिभागाभिः षड्भिर्घटिका-भिरधिका भवति। कदाचिदेकोनविंशत्या वर्षैस्तादृशी भवति। तत्र त्रिभागो-नाभिश्चतुर्दशघटिकाभिरधिका भवति। कुवेदेन्दुवर्षेभ्यस्तथैकोनविंशतिवर्षेभ्यो "द्विघाब्दा द्विरामैः खरामैश्च भक्ताः" इत्यादिना लब्धेष्वधिमासेषु शेषतिथिषु शून्यं प्रथमस्थाने सत्यशाः षड्घटिकाः स्युः, ६।२०। द्वितीये विच्यशाश्चतुर्दश १३।४०। अत उक्तं—"प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च" इति। प्रागप्रतश्चेत्यर्थादुक्तं स्यात्।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—शके ९७४ में एक क्षयमास हो चुका है। फिर १११५, १२५६, १३७७ इन शकाब्दों में क्षयमास होगा। क्षयमास प्रायः १४१ वर्षों में, कहीं-कहीं १९ वर्षों में भी होता है।

इदानीमस्य प्रश्नमाह—

यत् प्रोक्तं फलकीर्त्तनाय मुनिभिर्वर्षेऽधिमासद्वयं
तत् प्रब्रूहि कथं कदा कतिषु वा वर्षेषु तत्सम्भवः।
एवं प्रश्नविदां वरेण गणकः पृष्टो विजानाति य-
स्तं मन्ये गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने भास्करम् ॥ ८ ॥

स्पष्टम्।

इत्यधिमासादिनिर्णयः ॥ ६ ॥

दीपिका—स्पष्टम्।

पर्वतीय केदारदत्तकृतसिद्धान्तशिरोमणौ दीपिकाशिखाख्यटीकाद्वयोपेते
अधिमासादिनिर्णयः समाप्तः।

शिखा—ज्यौतिषशास्त्र के फलादेश के लिये, वर्ष में २ अधिमास होते हैं। ऐसा मुनियों ने कहा है। वह कैसे और कब होता है? और क्या इसका स्वरूप है। जो ज्यौतिषी इस प्रश्न का उत्तर दे देगा, उसे मुरझाये हुए कमल वन को विकसित करने वाले सूर्य के सदृश में समझूँगा। कैसे और क्या स्वरूप? इन प्रश्नों का समाधान पहले ही हो चुका है। कब होगा? इस पर विचार करना है—

एक कल्प चान्द्र दिन=१६०२९९९००००००
,, ,, सावन ,, =१५७७९१६४५००००
शेष—२५०८२५५०००००

अनुपात क्रिया $\frac{\text{क अधि मा} \times \text{१ व}}{\text{क सौव}}$ = एक वर्ष सम्बन्धी—

अधिशेष मासात्मक $= \frac{\text{१५९३३००००००} \times \text{१}}{\text{४३२०००००००}} = \frac{\text{१५९३३}}{\text{४३२००}}$

$= \frac{\text{५३११}}{\text{१४४००}}$ परस्पर भाग देने से आसन्न भिन्न के मानों के लम्बे स्वरूपों को छोड़ कर सब भिन्नों की आदि की लब्धियां इस प्रकार होती हैं।

$$\frac{\text{५३११}}{\text{१४४००}} = \text{०} + \cfrac{\text{१}}{\text{२} + \cfrac{\text{१}}{\text{१} + \cfrac{\text{१}}{\text{२} + \cfrac{\text{१}}{\text{२} + \cfrac{\text{१}}{\text{६} + \cfrac{\text{१}}{\text{१} + \cfrac{\text{१}}{\text{१} + \cfrac{\text{१}}{\text{७} + \cfrac{\text{१}}{\text{२} + \cfrac{\text{१}}{\text{२}}}}}}}}}}$$

इससे आसन्नमान $\frac{\text{०}}{\text{१}}, \frac{\text{१}}{\text{२}}, \frac{\text{१}}{\text{३}}, \frac{\text{३}}{\text{८}}, \frac{\text{७}}{\text{१९}}, \frac{\text{४५}}{\text{१२२}}, \frac{\text{५२}}{\text{१४१}}, \frac{\text{९७}}{\text{२६३}},$
$\frac{\text{७३१}}{\text{१९८२}}, \frac{\text{२२९०}}{\text{६२०१}}, \frac{\text{५३११}}{\text{१४४००}}$ इससे

स्थूलता से आदि के ४ मान छोड़कर १९, १२२, १४१, २६३, १९८२, ६२०१ और १४४०० इन वर्षों में क्षयमास हो सकेगा। इस गणित परम्परा से १२२ वें वर्ष में भी क्षयमास सम्भव है। ऐसा गणित से आ रहा है। जैसे १३७८ शकाब्द में क्षयमास हुआ था। तो भविष्य में कब-कब होगा। ऐसा जानने के लिये—१३७८+१२२=१५०० शकाब्द में पुन १६२२ शक में पुनः १७४४ शकाब्द में तथा १८६६ शकाब्द में क्षयमास हुए होंगे। यदि १९ वर्ष का माप लें तो १८६६+१९=१८८५ शकाब्द में तथा १९०३ में और आगे के भी शकाब्दों में क्षयमास हो सकता है। अथवा १४१ वर्ष के माप दण्ड से १७४४+१४१=१८८५ में आगे क्षयमास हो रहा है। अर्थात् जिस शकाब्द में क्षयमास हुआ है उससे आगे उक्त आसन्न मानवाली भिन्न के किसी हर तुल्य अग्रिम वर्ष में क्षयमास होगा—ऐसा समझना चाहिए। वस्तुतः यह भी कोई स्थिर माप नहीं सा है। कदाचित् ही उक्त आसन्नमान तुल्य अग्रिम वर्षों में क्षयमास का संभव होगा।

क्षयमास साधन के लिये जब गणित की कोई नियत स्थिति नहीं है तो इसका उल्लेख ही क्यों किया जाय ? ग्रह गणित मर्मज्ञों ने ऐसी शंकाएें भी की हैं। इसका सरल समाधान श्री भास्कराचार्य के कथनानुसार-ज्योतिश्शास्त्र का प्रयोजन विश्व को शुभाशुभ के भविष्य का आदेश करना है, यह फलादेश, लग्न शुद्धि की अपेक्षा रखता है। लग्न की स्थिति का ज्ञान स्पष्ट ग्रह से होता है, यह स्पष्ट ग्रह खगोल शास्त्र के ज्ञान पर आधारित है और खगोल शास्त्र का ज्ञान बिना अनेक भेद युक्त गणित के नहीं हो सकता इसलिये जो गणित ही नहीं जानता उसे खगोल ज्ञान कैसे होगा ? तब खगोल ज्ञान के अभाव से स्पष्ट ग्रहस्थिति का ज्ञान, एवं स्पष्ट ग्रहस्थिति ज्ञान के अभाव से लग्न ज्ञान, एवं लग्न ज्ञानाभाव

से विश्व का या जातक मात्र किसी भी प्राणी का भविष्य ज्ञान संभव नहीं है। अतएव फलित ज्यौतिष का ज्ञान गणित ज्योतिष के बिना हो ही नहीं सकता। "ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराण गणकैरादेश इत्युच्यते" इत्यादि। इस अभिप्राय से क्षयमास की सत्ता भी गणित ज्यौतिष नें स्पष्ट उपलब्ध है। भले ही उसके लाने की कोई नियत पद्धति न हो—क्योंकि-सौर सावन चान्द्र नाक्षत्र प्रभृति दिन मास वर्ष तो प्रसिद्ध हैं-और इनकी संख्या भी हम किसी इष्ट समय में सुखेन ला सकते हैं। जिस प्रकार इन मासों का फलादेश शास्त्रों में वर्णित है उसी प्रकार क्षयसास का भी विश्व में अशुभ फल का स्पष्ट उल्लेख है–जिस वर्ष क्षयमास होता है उस वर्ष विश्व में युद्ध आदि से भय होता है ("अस्रधारा वहति तदा मेदिनी")। और जिस वर्ष में दो अधिक मास होंगे वह भी विश्व के लिये भयावह होंगे क्योंकि सौर चान्द्र मासों का मल (विकार) अधिक मास है, इसी को "निःसूर्योऽधिको मास" सूर्यसंक्रान्ति राहित्य मास अथवा पुरुष रूप सूर्य का जिस चान्द्र मास में अभाव है वही नपुंसक मास है वह अधिक मास संज्ञक कहा गया है। और दो अधिक मास वाले वर्ष में एक क्षय मास का होना भी निश्चित है जिससे संसार में विशेष भय की स्थिति आ सकती है। फलित ज्यौतिष के इन प्रामाणिक वचनों की सार्थकता है अतः क्षय मास की निर्दिष्ट कालीन संभवासंभव स्थिति कहना भी उचित है। तत्कालीन तिथि पत्रों के साधन में तिथि पत्र निर्माण करते समय (पञ्चाङ्ग) की निम्न क्षय मास सारिणी से विशेष लाभ होगा अतः क्षयमास की सारिणी दी जा रही है। अधिक मास सारिणियाँ तो प्रसिद्ध हैं ही।

शकाद्ब	भविष्य में होने वाली क्षय मास की संभव स्थितियां (शक वर्षों में।)		
१८८५ वर्ष १९ माप से	१८८५ वर्ष १२२ माप से	१८८५ वर्ष १४१ माप से	१८८५ वर्ष २६३ माप से
१९०४	२००७	२०२६	२१४८
१९२३	२१२९	२१६७	२४११
१९४२	२२५१	२३०८	२६७४
१९६१	२३७३	२४४९	२९३७
१९८०	२४९५	२५९०	३२००

एवं उक्त गणित के १/१, १/२, १/३, ३/८, इन भिन्नों के १, २, ३, ८, हरों को लेने से १९८६, १८७, १८८८, १८९३ इस क्रम के शकाद्बों में भी क्षय मास का संभव हो सकता है किन्तु अधिक मास तो, तीसरे वर्ष से पहिले नहीं आने से ये मान त्याज्य हैं।

इति पर्वतीय केदारदत्त कृत हिन्दी शिखा टीका में अधिमासादि निर्णय प्रकरण समाप्त।

इदानीं भूपरिधिमाह।—

प्रोक्तो योजनसङ्ख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-४९६७
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो१५८१ऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश ३६० हृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥ १॥

भूपरिधेरुपपत्तिर्गोले कथ्यते। योजनलक्षणं गणिते कथितमस्ति। तथाप्यत्र यदुच्यते तत्रेदं कारणम्। भूरेकैव, किन्तु यत्त्वार्य्यभटादिभिराचार्यैः सत्यपि नियामके पलांशदर्शनेऽन्यथाऽन्यथा तत्प्रमाणमभिहितं तत्र पट्सप्ताष्टयवमङ्गुलं कनिष्ठिकादिभेदेन शास्त्रेपूच्यते। तेनाभिप्रायेणाऽन्येन वा यत् तैरुक्तं तदनेन स्पष्टीक्रियते। याम्योत्तरयोः पुरयोः पलांशान् वक्ष्यमाणप्रकारैर्ज्ञात्वा तेषामन्तरेणानुपातः। यदि भांशपरिधौ दक्षिणोत्तरमण्डल एतावत् पलान्तरं तदा भूपरिधौ पुरान्तरे किम्? इति। यल्लब्धं तावन्तो विभागाः पुरान्तरस्य क्रियन्ते। यावानेको विभागस्तावद्योजनं ज्ञेयम्। तादृशैर्योजनैर्देशान्तरं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—इसके बारे में विस्तृत विचार गोलाध्याय में किया गया है। लल्लाचार्य, आर्यभट्ट आदि पूर्व आचार्यों की भूपरिधि से हमारी भूपरिधि में अन्तर क्यों? इस शंका का समाधान आचार्य ने स्वयं किया है। अंगुलादिक माप में भिन्न-भिन्न आचार्यों की भिन्न-भिन्न कल्पनायें हैं। अतः योजनादि मान में अन्तर आना भी स्वाभाविक ही है। यदि सबका अंगुलादि मान में जौ के परिमाण बराबर होते तो यह विषमता नहीं होती। यह आचार्य का मत है।

इदानीं भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखाञ्चाह—

लम्बज्यागुणितो भवेत् कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतो
यद्वा द्वादशसङ्गुणः स विषुवत्कर्णेन भक्तः स्फुटः।
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥ २॥

अत्रोपपत्तिर्गोले।

दीपिका—स्पष्टम्।

शिखा—मध्यम भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से या १२ से गुणाकर त्रिज्या का भाग देने से भी स्पष्ट भूपरिधि होती है। क्योंकि—

$$\frac{\text{त्रि}}{\text{म. भूप.}} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{स्प. भूप.}} \therefore \frac{\text{लंज्या मभूप}}{\text{त्रि}} = \text{स्पष्ट भूपरिधि हुई।}$$

इसी प्रकार $\frac{\text{विषुवत्कर्ण}}{१२} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{स्प. भूप.}}$

$\therefore$ स्प. भूप. $= \frac{\text{लंज्या} \times १२}{\text{विषु. कर्ण.}}$ यह उपपन्न हुआ।

इदानीं देशान्तरमाह—

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्यः पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनैः ।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद्ग्रहे ॥ ३ ॥

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन गोलेऽभिहिता च ।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—जिस रेखादेश में स्वदेशीय अक्षांश के तुल्य अक्षांश हो, वहां से अपने देश और रेखादेश के अन्तर्गत जो योजनसंख्या हो उससे ग्रहगति को गुणाकर स्पष्ट भूपरिधि से भाग देकर जो फल प्राप्त हो उसे रेखा देश से पूर्व स्थानों के लिए ग्रह में ऋण एवं यदि रेखा देश से स्वदेश पश्चिमहो तो ग्रहों में देशान्तर फल को धन करना चाहिये ।

इदानीं देशान्तरघटिका आह—

प्राग्भूविभागे गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं विधोः स्यात् ।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या भवन्ति देशान्तरनाड़िकास्ताः ॥ ४ ॥
तद्घ्नं स्फुटं षष्टिहृतं कुवृत्तं भवन्ति देशान्तरयोजनानि ।
घटीगुणा षष्टिहृता द्युभुक्तिः स्वर्णं ग्रहे चोक्तवदेव कार्य्यम् ॥ ५ ॥
अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्तिः ।
ऊर्ध्वं तथाऽधश्चरनाड़िकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलयाते ॥ ६ ॥

यः किल मध्यरेखाया अपरिज्ञानात् ततः प्राक् पश्चाद् स्थितोऽस्मीति न वेत्ति, तेनैवं ज्ञातव्यम् । विधुग्रहणदिने घटिकायन्त्रेण स्पर्शकाले रात्रिगतं ज्ञेयम्; अथ च गणितेन स्पर्शकालो ज्ञेयः । गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं यदि दृष्टं, तदा द्रष्टा रेखातः प्राग्भूविभागे । यतो द्रष्टा यथा यथा रेखातः प्राग्व्रजति, तथा तथा रेखोदयात् प्रागेवार्कोदयं पश्यति । इतोऽन्यथा चेत् तदा पश्चाद् द्रष्टा । दृग्ग्रहणप्रग्रहणकालयोरन्तरं देशान्तरघटिकास्ताभिर्गुणं षष्ट्या हृतं स्पष्टभूवेष्टनम् । एवमनुपाताद्देशान्तरयोजनानि । अथवा किं योजनैः ? यदि घटीषष्ट्या गतिर्लभ्यते, तदा देशान्तरघटीभिः किम् ? इति । एवं यत् फलमुत्पद्यते तत् प्रागृणं पश्चाद्धनमिति युक्तमुक्तम् । तथा प्राच्यां ताभिर्घटीभिर्दिनवारप्रवृत्तिरर्कोदयादूर्ध्वं भवति । प्रतीच्यान्तु तस्मादधः । यतो लङ्कोदये वारादिः । अत एव च रवावुत्तरगोलस्थे चरार्द्धघटिकाभिरूर्ध्वम् । यतस्तदोन्मण्डलं क्षितिजादूर्ध्वम् । दक्षिणे त्वधोऽतस्तत्रोदयादधो वारप्रवृत्तिरिति सर्व्वं निरवद्यम् ।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—प्राचीन काल की देशान्तर ज्ञान की यह उत्तम युक्ति है । लङ्का, उज्जैन कुरुक्षेत्र आदि प्रसिद्ध नगरों में होती हुई ध्रुव तक जाने वाली रेखा का नाम प्राचीन आचार्यों ने याम्योत्तर माप की भूमि की मध्यरेखा कही है ।

जितना भी ग्रह गणित है वह सब उज्जैन के खमध्य के या उज्जैन के क्षितिज के अभिप्राय से लाया गया है। अब हमारा देश रेखा देशीय स्थानों से पूरब है या पश्चिम ? ऐसी शंका का समाधान चन्द्रग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष समय से किया गया है। गणित से देशान्तर संस्कार रहित सर्वचन्द्रग्रहण का सम्मीलन और उन्मीलन काल जानना चाहिये। उस दिन दृष्टि द्वारा भी सम्मीलन काल जानना चाहिये। यदि यह काल गणितागत सम्मीलन काल से अधिक है तो देखने वाला व्यक्ति रेखादेश से पूर्व है, अन्यथा रेखादेश से पश्चिम है। क्योंकि रेखादेश से पूर्व में पहले मध्याह्न होगा तत्पश्चात् रेखादेश में। अतः रेखा देशीय सम्मीलन काल से स्वदेशीय सम्मीलन काल अधिक होगा। पश्चिम में इसके विपरीत होगा। गोल स्थिति से यह स्पष्ट है। गणितागत काल और दृष्टि काल का अन्तर ही देशान्तर घटिका होगी। इस देशान्तर घटी से स्पष्ट भूपरिधि को गुणाकर ६० से भाग देने से जो संख्या मिलेगी, उतना ही योजन पूर्व या पश्चिम में रेखादेश से अपना देश होगा। जैसे प्राचीन काल से ही उज्जैन और काशी कां अन्तर ४८ योजन और देशान्तर १ घटी ९ पल (२८ मिनट) है। देशान्तर ज्ञान के और भी अनेक सुलभ उपाय आज कल प्रचलित हैं। देशान्तर ज्ञान सूर्य ग्रहण के समय भी हो सकता था, चन्द्र ग्रहण से ही क्यों ? ऐसी शङ्का जन साधारण को हो सकती है, खगोल वेत्ताओं को इस लिये नहीं होगी कि भू छाया जो अनन्त आकाश में दूर तक गई है वह कभी कभी चन्द्रमा के कक्षा तक, या चन्द्र कक्षा के बाहर तक भी पहुंच जाती है। उस समय चन्द्रमा को भूछाया में होकर जाना पड़ता है जिसे संसार के सभी प्राणी एक ही काल में देख सकते हैं। क्योंकि चन्द्रमा की छादिका भूभा और छाद्य चन्द्रमा भूमण्डल के जिन देशों के उदय से अस्त क्षितिज तक देखा जावेगा वे सब चन्द्रमा को ग्रसित ही देखेंगे। किन्तु सूर्य ग्रहण का छादक चन्द्रमा, जिस समय भूपृष्ठीय दृक्सूत्र में आवेगा उस समय इसी दृक्सूत्र निष्ठ भू धरातल में सूर्य ग्रहण का स्पर्श मध्य मोक्षादि होगा, दूसरे दृक्सूत्रनिष्ठ भूपृष्ठीय धरातल वालों के लिये कुछ समय बाद या पहिले उक्त स्पर्श मध्य मोक्ष की स्थिति, पूर्व और पश्चिम देश के क्रम से होगी अतः उक्त देशान्तर ज्ञान सूर्य ग्रहण से नहीं हो सकेगा। यह बात आगे सूर्य चन्द्र ग्रहणाधिकार में विशेष रूप से स्पष्ट होगी।

भूव्यास परिध्योर्निष्पत्तिः—

सूर्यसिद्धान्तमतेन $\frac{\text{व्यास}}{\text{परिधि}} = \frac{१}{\sqrt{१०}} = \frac{१}{३\cdot१६२६\cdots}$

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तमतेन " " "

महासिद्धान्त " " " "

द्वितीय-आर्यभट " " " "

प्रथम " " भूपरिधि. $= \frac{६२८३३ \times \text{भू व्या}}{२००००} = \text{भूव्या.} \times ३\cdot१११६.$

भास्कराचार्य " भू. प. $= \frac{\text{भव्या} \times ३९२७}{१२५०} = \frac{\text{भूव्या} \times २२}{७} = \text{भूव्या.} \times ३\cdot१४२८$

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तमतं विहाय प्रायस्सर्वेषामत्रैकवाक्यता प्रतिभाति ।

तद्यथाभू. प. $= \frac{\text{भूव्या} \times २१६००}{६८७६} =$ भूव्या × ३·१४१५९२७ इति

अथ भूव्यासमानम्—

पञ्चासिद्धान्तिकायामू—भूव्या = $१०१८\frac{९}{१०}$ योजनात्मकम् ।

आर्यभटीये	,,	= १०५०	,,
लल्लाचार्योक्तौ	,,	= १०५०	,,
वर्तमान सिद्धान्ते	,,	= १६००	,,
सिद्धान्त शिरोमणौ	,,	= $१५८१\frac{१}{२४}$	,,
द्वितीय आर्यभट सिद्धान्ते	,,	= २१०९	,,
यूरोपीयगणकानांमतेन च	,,	= ७९२७	मीलात्मकः (विषुवद्वृत्तीयः)
		७९००	,, (ध्रुववृत्तीयः)

विशेष—किसी आचार्य ने ६ जौ (६यवोदर) का किसी ने ७ जौ का और भास्कराचार्य ने ८ जौ का एक अंगुल मान माना है—इस अंगुल मान कल्पना भेद से भी भूपरिधि आदि में परस्पर भेद हो सकता है ।

इदानीं ग्रहाणां बीजकर्माह—

खाभ्रखार्कैर्हृताः कल्पयाताः समाः
शेषकं भागहारात् पृथक् पातयेत् ।
यत् तयोरल्पकं तद्विशत्या २०० भजेत्
लिप्तिकाद्यं फलं तत् त्रिभिः सायकैः ॥ ७ ॥
पञ्चभिः पञ्चभूभिः कराभ्यां हतम्
भानुचन्द्रेज्यशुक्रेन्दुतुङ्गेष्वृणम् ।
इन्दुना दस्रबाणैः कराभ्यां कृतै-
र्भौमसौम्येन्दुपातार्किषु स्वं क्रमात् ॥ ८ ॥

स्पष्टम् ।

अत्रोपलब्धिरेव वासना। यद्वर्षसहस्रषट्कं यावदुपचयस्ततोऽपचय इत्यत्रागम एव प्रमाणं, नान्यत् कारणं वक्तुं शक्यत इत्यर्थः।

दीपिका—स्पष्टम् ।

शिखा—कल्पगत वर्ष संख्या में १२००० से भाग देकर शेष को अलग कर, फिर शेष को १२००० में घटाना, इन दोनों शेषों में जो कम हो उसमें २०० का भाग देकर

कलादि फल को, ३, ५, ५, १५ और २ से गुणा करके मू., च., बृ., शुक्र और चन्द्रमा के मन्दोच्च में घटा देना फल को १, ५२, २ और ४ से गुणाकर मंगल, बुध, चन्द्रपात और शनि में क्रम से जोड़ देना इत्यादि इसे बीजकर्म कहते हैं। यह गणित के सूक्ष्म अवयवों की न्यूनाधिकता ग्रहण करने से, या त्यागने से जो अन्तर पड़ता है, उसी को ठीक करने की एक प्रमाण शून्य युक्ति भास्कराचार्य ने कही है।

अथाधिकारोपसंहारे श्लोकद्वयं युक्तियुक्तमाह—

यद् ग्राम्यैरपि विस्तृतं बहुतरैस्तन्त्रं प्रकारान्तरै-
र्मन्दानन्दकरं तदत्र निपुणैः प्राज्ञैरवज्ञायते।
आख्याते पृथुता सगोलगणिते व्यर्था हि तस्मान्मया।
संक्षिप्तं न च विस्तृतं विरचितं रञ्ज्यो हि सर्वोजनः ॥९॥
रूपस्थानविभागतो दृढगुणच्छिद्भ्यां च सञ्चारतो
नाना छेदविभेदभिन्नगुणकैर्नानाप्रकारेष्वपि।
आद्यात्र विचित्रभङ्गिभिरभिप्रेतप्रसिद्ध्यै क्रिया
लघ्वी वाऽथ समा तदेव सुधिया कार्यं प्रकारान्तरम् ॥१०॥

स्पष्टार्थमिदं श्लोकद्वयम्।

इति श्री भास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे मध्यगतिसाधनाधिकारः प्रथमः ॥१॥ अत्राधिकारे ग्रन्थसंख्या ९००।

दीपिका——स्पष्टम्।

शिखा——अल्पबुद्धि सत्तावाले ज्यौतिषियों ने अनेकानेक गौरव युक्त ग्रन्थों का निर्माण किया। किन्तु, बुद्धि-वैभव विशिष्ट विद्वत्समुदाय ने सर्वदा उनका तिरस्कार कर सुन्दर चमत्कृत युक्तियों से विभूषित श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की है। जिससे उभय पक्ष के लोग प्रसन्न रहें (तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषानित्यादि की तरह का भाव है)।

अंकों एवं स्थानों का विभाग अपरवर्तित हर और अंश के सञ्चार नाना रूप भिन्न-भिन्न गुणकों से अनेकानेक विधियों से प्राचीन आचार्यों की अपेक्षा और भी लघु से लघु प्रकार के समान जिस प्रकार इष्ट गणित की सिद्धि हो, बुद्धिमान उसी प्रकार की कल्पना से ग्रन्थ निर्माण करते हैं।

वासनाभाष्य सहित समग्र ग्रन्थ के अक्षर योग में ३२ का भाग देने से लब्धि तुल्य का नाम अधिकारान्त में ग्रन्थ संख्या कही है। इससे आज तक इस सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में प्रक्षेप नहीं पाया गया और न ग्रन्थ का कोई भी अंश लुप्त ही हुआ है।

पर्वतीय केदारदत्त लिखित सिद्धान्तशिरोमणि वासना भाष्य की शिखा टीका के साथ प्रथम मध्यगति साधनाधिकार समाप्त।

शुद्धाशुद्ध पत्रम्

पृष्ठस्य	पंक्त्याम्		
२	२१	विभु	विभुम्
७	१५	सिहान्त	सिद्धान्त
७	२७	स	से
९	३४	प.	य
१०	२२	ह	है
१४	३१	भे	मे
१५	३२	ह्वा	ड्का
१८	२८	ने	नै
२५	७	गे	ने
२५	१७	का	वा
२६	२२	स	सा
३९	४	०	दीपिका
४०	२८	ब	व
४१	३३	खो	खौ
४४	२३	रांशिभिः	राशिभिः
४५	२१	उपन्नम्	उपपन्नम्
४८	७	क्वति	कृत
४९	१२	द्वाब्धि	द्वयाब्धि
५०	३०	चक्रैंह्वता	चक्रैर्विहृता
५१	२८	से	में
५२	२४	चैंराशिकेन	त्रैराशिकेन
५४	१		
५४	१०	द्वयो पेते	द्वयोपेते
५७	२४	चतुश्शत्यां	चतुश्शत्या
६०	७	खरामैः ३०च	खरामै ३० श्च
६०	१८	अन्यत्रिंशत्	अन्यस्त्रिंशत्
६०	२०	दीपक	दीपिका
६२	८	दिना द्यम्	दिनाद्यम्
६२	२६	ध्रुबक	ध्रुवक
६३	१७	व्यष्ठया	व्यष्टया
६४	२२	भतितव्यम्	भवितव्यम्
६४	२४	तिथिभ्यः	तिथिभिः

पृष्ठस्य	पंक्त्याम्		
६४	२९	ष्षष्ठ्या	ष्षष्ट्या
६४	३२	८२२	७०२
६४	३३	चतुष्षष्ठिर्हरोऽतः	चतुष्षष्टिरोहऽतः
७१	१०	१५१६७८	१५१७८७
७१	१५	षड्न्ज	षड्नज
७२	९	मृदुर्द्रता	मृदुर्द्रुता
७२	१२	भगणाशा	भगणा
७२	२८	द्विविषदां	दिविषदां
७३	४	चकलिप्ता	चक्रलिप्ता
७३	५	शकाशादूर्ध्वोर्ध्वस्था	सकाशादूर्ध्वस्था
७३	८	चैतदैकया	चैत्तदैकया
७३	१३	धिकना	धिकता
७५	३	स्पस्ट	स्पष्ट
७५	१२	तिथियो	तिथयो
७६	२३	दिनौधः	दिनौघः
७८	१६	अग्निषोमौ	अग्निसोमौ
७८	२०	ग्रहुगणित	ग्रहगणित
८२	१०	सौरेणाद्वस्तु	सौरेणाब्दस्तु
८३	६	एतच्चान्द्रदिकञ्च ०।२४	एतच्चान्द्रदिनादिकञ्च० । २५
८४	९	सौरमास	सौरमासे ।
८४	१९	वह्लपो	बह्लयो
८५	६	पतीति	पततीति
८६	५	साबन	सावन
८७	३	युक्तस्म	युक्तस्य
७७	१४	संसर्य	संसर्प
८७	१६	संक्रय	संक्रमः
८७	२५	अहर्गणनयने	अहर्गणानयने
८७	२६	यीजने	योजने
८७	२८	मासेस्वधिकः	मासेष्वधिकः
८८	६	इत्याबि	इत्यादि
८८	१२	भगर्भगाणाम्	भूगर्भगाणाम्
८८	२६	केन्द्रयोरेव	केन्द्रयोरेव
८८	३४	महोत्सत्व	महोत्सव
८९	१२	उपहासस्पव	उपहासपद
८९	३१	वर्षैरके	वर्षैरेक
९०	३५	मास तिथि-	मासस्य तिथिर्गु-

पृष्ठस्य	पंक्त्याम्		
९२	३१	किसी वर्ष वैवत्	किसी वर्ष यदि
९२	३२	हो गया ।	हो गया तो फिर
९३	३३	अग्नि भूमिः १३७८	अग्निभूमिस्तया १३७८
९४	८	स्यः,	स्युः,
९६	४	ने	में
९६	८	वहति	पिवति
९६	१६	(पञ्चाङ्ग) को	पञ्चाङ्ग निर्माताओं को
९७	१९	द्वादशसङ्गुणः	द्वादशसङ्गुणाः
९९	३१	भूपरिधि	भूपरिधिः
१००	२९	ने	में
१०१	१६	सिद्धान्तेशिरोमणिवासनाभाष्ये	सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये

॥ इति शिवम् ॥